गुरुकुल-पत्रिका

पूर्णाङ्क ९७ ★

अगस्त १९५६

व्यवस्थापक : श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

सम्पादक समिति : श्री सुखदेव दर्शनवाचस्पति

श्री शङ्करदेव विद्यालङ्कार

श्री रामेश वेदी (मन्त्री)

इस अङ्क मे

अगले अङ्क में

भारत की मौलिक एकता का आधार	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
वर्षस्य सर्गा महयन्तु भूमिम्	श्री रामनाथ वेदालङ्कार
मस्तिष्क और टेलीविज़र (सचित्र)	श्री आर. जेड. अर्मारोव, एम. डी., एम एस सी
चम्बल की घाटी की खुदाई से (सचित्र)	
मधु द्वारा चिकित्सा (सचित्र)	डा० एदवार्द कान्देल एम एस-सी.

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं।

मूल्य देश में ४) वार्षिक

विदेश में ६) वार्षिक

एक प्रति

छः आने

ओ३म्

गुरुकुल-पत्रिका

गुरुकुल कॉंगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

वेद विषयक प्राचीन मत

श्री धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

वेदों के विषय में आर्यों का यह परम्परागत विश्वास चला आ रहा है कि वे ईश्वरीय ज्ञान हैं। परम कारुणिक सर्वज्ञ भगवान् ने मनुष्य-मात्र के कल्याणार्थ सृष्टि के प्रारम्भ में यह पवित्र ज्ञान अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा नामक चार ऋषियों के पवित्रान्तःकरण में प्रकाशित किया जिस से सब मनुष्यों को वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रिय यथा विश्वविषयक सब कर्तव्यों का यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो सके और उस के द्वारा वे सुख, शान्ति तथा आनन्द को प्राप्त कर सकें। प्राचीन समस्त साहित्य में इस विश्वास का समर्थन स्पष्ट शब्दों में पाया जाता है। समस्त स्मृतिकार, दर्शनशास्त्रकार, उपनिषत्कार तथा रामायण महाभारत श्रौत सूत्र गृह्यसूत्रादि के लेखक यहां तक कि पुराणकार स्पष्टतया वेदों को ईश्वरीय तथा स्वतः प्रमाण और अन्य सब ग्रन्थों को परतः प्रमाण मानते हैं। उदाहरणार्थ मनु महाराज ने जो सर्व प्रथम धर्मशास्त्रकार हैं अपनी स्मृति में कहा है कि—

वेदोऽखिलोधर्ममूलम्। मनु. २ ६।

अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद; अथर्ववेद नामक सम्पूर्ण वेद धर्म का मूल है। वही धर्म के विषय में स्वतः प्रमाण है। मनुस्मृति २. १३ में लिखा है—

धर्मं जिज्ञासमानानां, प्रमाणं परमं श्रुतिः।

अर्थात् जो धर्म का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं उन के लिए परम प्रमाण वेद ही है। इस श्लोक की कुल्लूक भट्टकृत टीका में जाबाल स्मृति, भविष्यपुराण तथा जैमिनि मुनि कृत मीमांसा शास्त्र आदि के अन्य भी कई स्पष्ट प्रमाण मनु महाराज की इस उक्ति के समर्थन में उद्धृत किए गए हैं अतः प्रसंगवश उन्हें उद्धृत करना अनुचित न होगा।

धर्मं च ज्ञानुमिच्छतां प्रकृष्टं प्रमाणं श्रुतिः। प्रकर्षबोधनेन च श्रुतिस्मृतिविरोधे स्मृत्यर्थो नादरणीय इति भाव।

अतएव जाबालः—

श्रुतिस्मृतिविरोधे तु श्रुतिरेवगरीयसी।

भविष्यपुराणेऽप्युक्तम्—

श्रुत्या सह विरोधेतु, बाध्यते विषयं विना।

जैमिनिरप्याह—

विरोधे त्वनपेक्ष्यं स्यादसतिह्यनुमानम्।

मीमांसा शास्त्र १. ३. ३।

श्रुतिविरोधे स्मृतिवाक्यमनपेक्ष्यम् अप्रमाणम् अनादरणीयम्। असति विरोधे मूल-वेदानुमानम् इत्यर्थः॥'

(मनुस्मृति कुल्लूक टीका सहित निर्णय सागर बम्बई में मुद्रित, पृष्ठ ३२)।

मनुस्मृति के ऊपर उद्धृत श्लोक में जो यह कहा है कि धर्म जानने की इच्छा रखने वालों के लिए सब से बड़ा प्रमाण वेद है उस का स्पष्ट अर्थ यह है कि यदि कहीं श्रुति (वेद) और

स्मृति का विरोध हो तो श्रुति को ही प्रामाणिक मानना चाहिए स्मृति को नहीं।

मनु महाराज ने वेदों का महत्व बताते हुए यहां तक कह दिया कि—

पितृदेवमनुष्याणां, वेदश्चक्षुः सनातनम्।
अशक्यं चाप्रमेयं च, वेदशास्त्रमितिस्थितिः॥
—९४।

चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाः,चत्वारश्चाश्रमाः पृथक्।
भूतं भव्यं भविष्यच्च, सर्वं वेदात्प्रसिद्ध्यति॥
—९७।

बिभर्ति सर्वभूतानि, वेदशास्त्रं सनातनम्।
तस्मादेतत्परं मन्ये, यज्जन्तोरस्य साधनम्॥
—९९। मनु. अ. १२।

सारांश यह है कि वेद, पितर देव मनुष्य के लिए सनातन मार्ग दर्शक नेत्र के समान है उस की महिमा का पूर्णतया प्रतिपादन करना अथवा उस को सम्पूर्णया समझ लेना बड़ा कठिन है। चारों वर्ण, तीन लोक, चार आश्रम, भूत भविष्य और वर्तमान विषयक ज्ञान वेद से ही प्रसिद्ध होता है। सनातन (नित्य) वेद शास्त्र सब प्राणियों को धारण करता है यही सब मनुष्यों के लिए भवसागर से पार होने का साधन है, इत्यादि।

याज्ञवल्क्य स्मृति का वचन

न वेद शास्त्रादन्यत्तु, किंचिच्छास्त्रं विद्यते।
निस्सृतं सर्वशास्त्रं तु, वेदशास्त्रात्सनातनात्॥

अर्थात् वेद शास्त्र से बढ़ कर कोई शास्त्र नहीं। सब अन्य शास्त्र सनातन वा नित्य वेद शास्त्र से ही निकले हैं।

अत्रि स्मृति का वचन

नास्ति वेदात्परं शास्त्रं, नास्ति मातृ समो गुरुः।

अर्थात् वेद से बड़ा कोई शास्त्र नहीं। माता के समान कोई गुरु नहीं।

ब्राह्मणों और उपनिषदों के वेद विषयक कुछ वचन

ब्राह्मणों और उपनिषदों में भी वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मानने का स्पष्ट प्रतिपादन है। यथा—

मुण्डकोपनिषत् का वचन

अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ,
दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः।
मु. २, १. ४।

तस्मादृचः साम यजूंषि दीक्षाः। मु. २. १. ७।

अर्थात् उस भगवान का मस्तक मानो अग्नि है। सूर्य और चन्द्र उस के नेत्रों के समान हैं, दिशाएं उस के कानों के तुल्य हैं। वेद मानो उस की वाणी से निकले अर्थात् ईश्वरीय ज्ञान हैं।

शतपथ ब्राह्मणान्तर्गत बृहदारण्यकोपनिषत् में स्पष्ट कहा है कि -

एतस्य वा महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्
यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः।
४. ५. ११।

अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद उस महान परमेश्वर के मानो श्वास से निकले हैं।

शतपथ ब्राह्मण का अन्य वचन

शतपथ ब्राह्मण में एक अन्य स्थान पर वेदों को छन्द के नाम से पुकारते हुए उस शब्द की जो व्युत्पत्ति दी है उस से भी ब्राह्मणकार के मन में वेदों के प्रति अत्यन्त आदर का भाव सूचित होता है। जो निम्न शब्दों में है—

यदेभिरात्मानमाच्छादयन् देवा मृत्यो-
बिभ्यतः तच्छन्दसां छन्दस्त्वम्।

अर्थात् देवों (सत्यनिष्ठ विद्वानों-सत्य-संहिता वै देवाः, सत्यमया उ देवाः, विद्वांसो वै देवाः इत्यादि प्रामाण्यात्) ने मृत्यु से भयभीत होकर

इन वेदों से क्योंकि अपने को आच्छादित कर लिया इस लिए वेदों को छन्द कहते हैं। तात्पर्य यह है कि वेद ज्ञान ही मृत्यु भय से सर्वथा मुक्त करने वाला है।

सर्वथा इस के समान ही छन्द की व्युत्पत्ति ताण्ड्यमहाब्राह्मणान्तर्गत छान्दोग्योपनिनिषत् में इन शब्दों में की गई है—

देवा वै मृत्योर्बिभ्यतस्त्रयीं विद्यां प्राविशन्ते छन्दोभिरच्छादयन् यदेभिरच्छादयनतच्छन्दसां छन्दस्त्वम्। छा. १. ४. २।

अर्थात् देवों (सत्यनिष्ठ विद्वानों) ने मृत्यु से भयभीत होकर त्रयी विद्या (ज्ञान कर्म उपासना विद्या का प्रतिपादन करने वाले वेद) का आश्रय लिया। उन्होंने अपने को वेद मन्त्रों से आच्छादित कर दिया (ढक लिया) क्योंकि इन वेदमन्त्रों से उन्होंने अपने को आच्छादित कर लिया इस लिये इन्हें छन्द के नाम से कहा जाता है। इस से भी ब्राह्मणों और उपनिषदों के लेखकों की वेदों के विषय हैं अत्यधिक श्रद्धा सूचित होती है इस में कोई संदेह नहीं। ऐतरेय ब्राह्मण में भी वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मानते हुए स्पष्ट कहा है कि—

'प्रजापतिर्वा इमान् वेदानसृजत।'

अर्थात् समस्त प्रजा के स्वामी परमेश्वर ने प्रजा के कल्याणार्थ वेदो का निर्माण किया ये वचन स्पष्ट हैं कि इन पर किसी प्रकार की टीका टिप्पणी की आवश्यकता नहीं। इसी प्रसङ्ग में मैं तैत्तिरीय ब्राह्मण की निम्न आख्यायिका भी उल्लेखनीय है जिस में वेदों को समस्त ज्ञान का भण्डार और विद्या दृष्टि से अनन्त कहा गया है। वह आख्यायिका निम्न है—

भरद्वाजो ह त्रिभिरायुर्भिर्ब्रह्मचर्यमुवास। तं ह जीर्णं स्थविरं शयानम् इन्द्र उपव्रज्योवाच भरद्वाज! यत्ते चतुर्थमायुर्दद्यां किमनेन कुर्या इति। ब्रह्मचर्यमेवैतेन चरेयमिति होवाच। तं त्रीन गिरिरूपानविज्ञातनीव दर्शयांचकार तेषां हैकैकस्मान्मुष्टिमाददे। सहो वाच भरद्वाजेत्यामन्त्र्य वेदावा एते, अनन्ता वै वेदा., एतैस्त्रिभिरायुर्भिरन्ववोचथाः अथ त इतरदनूक्तमेव॥ तै. ब्रा. ३. १०. ११. ३।

अर्थात् भरद्वाज ने ३०० वर्ष पर्यन्त (मनुष्य की ३ आयु-शतायुर्वेपुरुषः के अनुसार (१०० × ३ = ३००) ब्रह्मचर्य अर्थात् वेदों का अध्ययन किया। इस प्रकार अध्ययन करते-करते वह जब अत्यन्त वृद्धावस्था को प्राप्त हो गया तो इन्द्र ने उसके समीप आकर कहा यदि तुझे और भी आयु मिले तो तू उस से क्या करेगा? भरद्वाज ने उत्तर दिया कि उस से भी मैं वेदों का अध्ययनादि रूप ब्रह्मचर्य ही करूंगा। इन्द्र ने पर्वत के समान तीन ज्ञान राशिरूप वेदों को दिखाया और उन में से प्रत्येक राशि से मुट्ठी सी भर ली और भरद्वाज को कहा कि ये वेद इस प्रकार ज्ञान की राशि वा पर्वत के समान है जिनके ज्ञान का कहीं अन्त नहीं। यद्यपि तूने ३ आयु पर्यन्त (३०० वर्ष तक) वेदों का अध्ययन किया है तथापि तुझे उनके सम्पूर्ण ज्ञान का अन्त नहीं प्राप्त हुआ।

इस आख्यायिका से भी वेदों का महत्व ब्राह्मणकार को दृष्टि में स्पष्टतया सूचित होता है। वर्तमान युग के महान वैदिक धर्मोद्धारक शिरोमणि आचार्यप्रवर महर्षि दयानन्द ने इसी आख्यायिका के ही भाव को अपने शब्दों में नियम के रूप में प्रकट कर दिया है कि वेद सब सत्य विद्याओं के पुस्तक हैं। वेद का पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

महाभारत के वेद गौरव विषयक वचन

महाभारत में महर्षि वेदव्यास जी ने वेद को नित्य और ईश्वरकृत अनेक स्थानों पर बताया है और उनके अर्थ सहित अध्ययन पर बड़ा बल दिया है। उन्होंने यह भी कहा कि ऋषियों तथा पदार्थों के नाम वेदों से ही लेकर रखे गये। महाभारत के निम्न श्लोक इस विषय उल्लेखनीय है—

अनादि निधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।
आदौ वेदमयी दिव्यायतः सर्वाः प्रवृत्तयः॥
म. भा. शान्ति पर्व अ. २३२. २४।

अर्थात सृष्टि के प्रारम्भ में स्वयम्भू परमेश्वर वेदरूप नित्य दिव्य वाणी का प्रकाश किया जिस से मनुष्यों की सारी प्रवृत्तियां होती हैं। यह ऋग्वेद के सुप्रसिद्ध मन्त्र ८. ७. ६. का मानो अनुवाद है—

'तस्मै नूनमभिद्यवे वाचा विरूपनित्या।
वृष्णे चोदस्वसुष्टुतिम्॥'

जिस में वेदवाणी को नित्य और विविध विषयों का निरूपण कर प्रतिपादन करने वाली होने के कारण विरूपा कहा गया है। इसी अध्याय में आगे कहा है—

नानारूपं च भूतानां कर्मणां च प्रवर्तनम्।
वेदशब्देभ्य एवादौ, निर्मिमीते स ईश्वरः॥
नामधेयानिचर्षीणां, याश्चवेदेषु दृष्टयः।
शर्वर्यन्ते सुजातानां, तान्येवैभ्यो ददात्यजः॥
—म. भा. शांतिपर्व मोक्षधर्मपर्व
अ. २३२. २५. २६. २७।

अर्थात ईश्वर ने वस्तुओं के नाम और कर्म वेद के शब्दों से निर्माण किये। ऋषियों के नाम और ज्ञान भी प्रलय के अन्त अर्थात् सृष्टि के प्रारम्भ में वेदों के द्वारा दिये गये।

वेदों के अर्थ सहित अध्ययन पर बल देते हुए महर्षि व्यास ने कहा है कि—

यो वेदे च शास्त्रे च, ग्रन्थधारणतत्पर।
न च ग्रन्थार्थतत्वज्ञः, तस्य तद्धारणंवृथा॥
भारं स वहते यस्य, ग्रन्थस्यार्थ न वेत्ति यः।
यस्तु ग्रन्थार्थतत्वज्ञो नास्य ग्रन्थागमोवृथा॥
म. भा. शान्तिपर्व मोक्ष. अ. ३०५. १३. १४।

अर्थात् जो वेद शास्त्रों को केवल पढ़ लेता है किन्तु उनके अर्थ और तत्व को नहीं जानता उसका इस प्रकार उस-उस ग्रन्थ को धारण कर लेना वा केवल पढ़ लेना भार रूप और निष्फल सा हो जाता है। अतः वेदादि शास्त्रों को अर्थ और तत्व सहित समझने का ही सबको प्रयत्न करना चाहिये।

निरुक्त का वचन

यही बात निरुक्त में श्री यास्काचार्य ने निम्न लिखित श्लोक द्वारा कही है।

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य
वेदं न विजानाति योऽर्थम्।
योऽर्थज्ञइत्सकलं भद्रमश्नुते नाक-
मेति ज्ञानविधूतपाप्मा॥
नैगम काण्ड १. १८।

इस का यही तात्पर्य है कि जो वेद को पढ़ कर उस के अर्थ को नहीं समझता वह भारवाही पशु के समान है किन्तु जो वेदों के अर्थ को समझने वाला है वही समस्त सुख और कल्याण को प्राप्त करता है। वह उस पवित्र ज्ञान के द्वारा पाप को नष्ट कर के परमानन्द रूप मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

★

मेरा विद्यार्थी जीवन

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

बच्चों, मैं अपने विद्यार्थी जीवन की बातें आप लोगों को सुनाऊंगा, वह अद्भुत तो लगेंगी ही, मनोरञ्जक भी बहुत होंगी। आप लोगों ने हरिद्वार तो देखा ही होगा। वह हमारे देश का प्रसिद्ध तीर्थ और दर्शनीय स्थान है। गंगाजल में स्नान भी किया होगा। हरिद्वार के सामने, गंगा के दूसरे पार, शिवालक पहाड़ की तराई में जो लम्बा चौड़ा जंगल है, उसी में वह विद्यालय बना हुआ था, जिस में मैंने अपना बचपन बिताया. उस विद्यालय का नाम गुरुकुल कांगड़ी था।

गुरुकुल के पूर्व में वह पर्वतमाला थी, जो हिमालय की जटाओं की तरह भारत के पूर्व में सैकड़ों मील तक फैली हुई है। पश्चिम में गंगा की नीली धारा बहती थी। बरसात में जब गंगा में बाढ़ आती थी, तब हमारा विद्यालय एक द्वीप बन जाता था। कभी-कभी तो पानी इतना बढ़ता था कि बाहर के संसार से सम्बन्ध बिल्कुल टूट जाता था। आश्रम के चारों ओर जंगल था, जो पहाड़ तक फैल कर मशहूर जंगल कजली बन से मिल जाता था। कजली वन अपने शेरों और हाथियों के कारण शिकारियों को बहुत पसन्द है।

इस तरह गंगा की धारा, जंगल और पहाड़ से घिरी हुई जगह में हमारा विद्यालय बना हुआ था। हमारी दिनचर्या प्रातःकाल ५ बजे शुरू हो जाती थी। ५ बजे उठ कर, पानी के लोटे हाथों में ले कर जंगल की ओर चल देते थे। उस जंगल में खैर के पेड़ बहुत थे। खैर का कांटा तीखा और कठोर होता है। रास्ते भर में वे कांटे बिखरे रहते थे। अंधेरे में, नंगे पांव जंगल में जाना तलवार की धार पर चलने से कम नहीं था। पहले पहल तो पांव छलनी हो जाते थे। परन्तु धीरे-धीरे ऐसी आदत पड़ गयी थी, और पांव के तले का चमड़ा इतना कठोर हो गया था कि रास्ते के कांटे या तो दब जाते थे, या टूट जाते थे।

सुबह बाहर जाते हुए एक लम्बा, सिर तक ऊंचाई का दंड हाथ में रखना जरूरी था। जंगल में बड़ा शेर तो कभी-कभी आता था, परन्तु छोटा शेर, या शेर का छोटा संस्करण, जिसे गांव के लोग बघेला कहते थे, रात के समय गुरुकुल के चारों ओर नित्य ही मंडराया करता था। एक रात बांसों के घेरे में घुस कर गाय के बछड़े को ले भागता था तो दूसरी रात किसी कुत्ते पर हाथ साफ करता था। पूरे आदमी से घबराता था, परन्तु बच्चा मिल जाय तो हथियाने का यत्न करता था। उस से बचने के लिये हाथ में डंडा रखना आवश्यक था। वही डंडा खैर के पेड़ से दातून तोड़ने के काम भी आता था।

जंगल से लौट कर गंगा तट पर पहुँचते थे, जहां व्यायाम होता था। हमारा व्यायाम कोई छोटा मोटा प्रदर्शन नहीं था। दो सौ दंड और दो सौ बैठक करना तो आवश्यक था, उस पर भी यदि सर्दियों में पसीना न निकले तो कुछ अधिक व्यायाम करना पड़ता था, हमारे गुरुजी व्यायाम के बहुत बड़े समर्थक थे, बरसात के दिनों में दोनों समय नहीं, तो एक समय अखाड़े में कुश्ती की व्यवस्था रहती थी, मेरा शरीर कुछ हल्का और फुर्तीला था, इससे मैं कुश्ती में अच्छा था, एक बार बड़ी मजेदार घटना हुई, हमारे विद्यालय में एक व्यायाम शिक्षक आये, बहुत लम्बे चौड़े और मजबूत पट्ठों वाले फौजी सज्जन थे, कुश्ती की बात चल गई, कहने लगे

कि ताकत के सामने कुश्ती के दाव पेंच नहीं चल सकते। मैंने कहा कि आपका ख्याल गलत है, कुश्ती भी एक कला है। इस पर वह बोले कि मेरे अन्दर ताकत है, मैं चैलेंज देता हूँ कि कोई पहलवान मेरे सामने आ जाय, मैं उसे उठाकर पटक दूंगा। मेरे मुंह से निकल गया कि ऐसे अभिमान की बात न कहिये, कभी नीचा देखना पड़ जायगा। इस पर तनातनी हो गई, और मेरी और उनकी कुश्ती बद गई। इस पर गुरुकुल भर में सनसनी फैल गई। कहां मैं हल्का फुल्का सा लड़का, और कहां वह गडाडील जवान। लड़कों ने कनस्तर बजाकर कुश्ती की घोषणा कर दी। शाम के समय अखाड़े के चारों ओर गुरुकुल के ऊँचे से ऊंचे अधिकारियों, छात्रों और गांवों के लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गई। पहले हमारे व्यायाम शिक्षक अखाड़े में उतरे। उन्होंने खम ठोक कर दो चार दंड किये तो उन के शरीर के मसल फूल उठे। मैं अखाड़े के किनारे खड़ा था। जांघिया कस कर कुश्ती के लिये तैयार था। उनके खम की आवाज सुनकर अखाड़े में उतर आया। वह अपनी ताकत के भरोसे निःशंक होकर आगे बढ़े, और मेरे पास आकर मुझे कमर से पकड़ कर पटकने की योजना बनाने लगे। मुझे खुला अवसर मिल गया, और मैंने उनकी कमर में हाथ देकर टांग का अड़ंगा लगाकर चीत्त कर दिया। उस पर चारों ओर कनस्तर बजने लगे, और हमारे व्यायाम शिक्षक यह कहते हुए खड़े हो गये कि यह भी कोई कुश्ती है, यह तो चालबाजी है।

व्यायाम के बाद कुछ आराम कर के गंगा में स्नान करते थे। वह दिन भर में हमारी सब से अधिक प्रसन्नता का अवसर होता था। ठंडे पानी में खुल कर तैरने से न कोई अच्छा व्यायाम है और न मनोरंजन। दस पन्द्रह मिनट तक गंगा के जल में स्नान करके घण्टों की थकान दूर हो जाती थी, और शरीर हल्का हो जाता था। प्रति दिन तो इतना ही गंगा स्नान होता था, अनध्याय के दिन कभी-कभी चार चार, पांच पांच, घन्टों तक तैरा करते थे। गुरुकुल से कोई दो मील चन्डीदेवी का मन्दिर था। उसके नीचे से गंगा में पड़ते थे, और तैरते बातें करते और खेलते हुए गुरुकुल भूमि में आ लगते थे। गंगा का तट होने के कारण गुरुकुल के लगभग सभी अध्यापक और छात्र तैरना जानते थे। यह मशहूर है कि तैरना उसी को आता है। जो कम से कम एक बार डुबकी खा कर पानी पीले। मैंने तैरना सीखते हुए दो तीन डुबकियाँ खाईं, और पानी पीया था, सो मैं अच्छा तैराक बन गया था।

स्नान के पीछे सन्ध्योपासन और फिर प्रातराश अर्थात् सुबह का नाश्ता लेकर पढ़ने में लग जाते थे। उन दिनों हमारी पढ़ाई घड़ी से होती थी, घण्टों से नहीं। अर्थात् हर आधे घन्टे के बाद घन्टा नहीं बजता था, घड़ी में देख कर छात्र एक गुरू के पास से उठ कर दूसरे के पास चले जाते थे। पढ़ने के समय बैठते थे आसनों पर, तब हमारे विद्यालय में अभी बैंचों का चलन नहीं हुआ था। उस अवस्था में हमें एक आराम अवश्य था। पूरा व्यायाम और भर पेट नाश्ता करने के पश्चात नवान्हिक या सांख्यदर्शन पढ़ते-पढ़ते कभी ऊंघ आ जाती थी, तो ऊंघने का अवसर मिल जाता था। एक बार तो ऐसा हुआ कि ठण्डा दिन होने के कारण कुछ समय के लिये गुरु और शिष्य सभी निद्रा देवी की गोद में चले गये, और जब उठे तो कौन किसे टोके, सभी की आंखों में नींद की लाली थी।

दोपहर के भोजन के पश्चात् फिर पढ़ाई,

और पढ़ाई के पीछे फिर व्यायाम, स्नान और सन्ध्या हवन। रात को सोने से पहले कड़ुए तेल के दिये की रोशनी में या तो दिन का पाठ याद करते थे, अथवा सूत्रों या श्लोकों की अन्त्याक्षरी करते थे। रात को भूमि पर या लकड़ी के तख्त पर दरी बिछा कर गहरी नींद में सो जाते थे।

यह थी हमारी रोज की दिनचर्या, परन्तु यह न समझना चाहिये कि हमारे जीवन की नदी सदा समतल हो कर ही बहती थी, उस में ऊंच नीच भी होते रहते थे। छुट्टी के दिन हम लोग पहाड़ पर प्याल खाने जाते थे, अथवा बरसात के दिनों में तैरने का उत्सव हो जाता था। प्याल एक पहाड़ी फल होता है, जो फालसे से मिलता जुलता है। वह भगवान् की खेती थी, पेड़ पर चढ़ कर उस के तोड़ने की सजा नहीं थी। हां, जब कभी हम लोग गंगा के किनारे या मनुष्यों के खेतों में लगे हुए आम, जामुन आदि के पेड़ों की सफाई कर देते थे, तब दण्ड मिलता था। ऐसे अपराधों का दण्ड प्रायः यह होता था कि दो सौ बार गायत्री का मन्त्र शुद्ध रूप से लिखा जाय। साधारण अपराधों की यह सजा थी, परन्तु जिसे गुरु जी आचरण सम्बन्धी अपराध समझते थे, उसके लिये अपनी लकड़ी की खड़ाऊं से बेंत का काम लेते थे।

एक बार गंगा में बहुत भारी बाढ़ आगई। ठीक किनारे पर दो मकान बने हुए थे। एक मुख्याधिष्ठाता जी का बंगला था, और दूसरा आनन्दाश्रम था, जिसमें अध्यापक लोग रहते थे। बढ़ता बढ़ता पानी उन की दीवारों से टकराने लगा, और किनारों को काटने लगा। बहुत संकट का समय आ गया। गुरुकुल की बस्ती के चारों ओर अथाह पानी और किनारे की मिट्टी धड़ाधड़ गिरने लगी। मुख्याधिष्ठाता ने सब छात्रों को बुला कर समझाया कि अब रक्षा का एक ही उपाय है कि जंगल से पेड़ काट कर और रस्सों में बांध कर किनारों पर डाले जायें, ताकि पानी की चोट को रोक सकें। सब छात्र तैरना तो जानते ही थे, कमर कस कर तैयार हो गये। कुछ पेड़ काटने में लगे, बाकी नदी में कूद गये, और कटे हुए पेड़ों को मोटे रस्सों से बांधकर किनारों पर छोड़ने लगे। लगभग दो घन्टो की मेहनत से किनारों का कटना बन्द हो गया। तब हमें मालूम हुआ कि तैरना भी शिक्षा का एक आवश्यक अङ्ग है।

एक बार दिन के समय गुरुकुल की बागीची में शेर घुस आया। शाम का समय था। लोग खेल के मैदान में हाकी खेल रहे थे। इतने में शोर मच गया कि शेर आ गया। सब खिलाड़ी हाकियें घुमाते हुए बागीची की ओर भागे। वहां एक छोटे से टुकड़े में बहुत ऊंची और घनी ईख खड़ी थी। शेर शोर सुन कर ईख में घुस गया। खेल की भावना जोर पर थी, विद्यार्थी चारों ओर से खेत में घुस गये। जंगल में यहां रहने के कारण हम लोगों के मन में सिंह नाम का भय नहीं रहा था। सिंह खेत की गहराई में दुबका बैठा था। लम्बा चौड़ा ब्रह्मचारी ठीक उसके सामने आ गया। शेर ने झपट कर उसकी टांग अपने मुंह में ले ली। ब्रह्मचारी चिल्लाया तो दसों ब्रह्मचारी वहां पहुंच कर शेर पर चारों ओर से हाकियां बरसाने लगे। तब शेर टांग छोड़ कर बाहर की ओर भागा, और खेत से निकल कर एक नाटे से परन्तु मजबूत विद्यार्थी पर झपट पड़ा। विद्यार्थी ने अपना दिमाग नहीं खोया, और अपने सिर पर धोती लपेट कर बैठ गया। शेर के पंजे कपड़े पर पड़कर उलझ गये। इस से पहले कि वह अपने पंजों को उलझन से निकालता, दसों हाकियों के भरपूर

वार उसकी पीठ पर बरस गये, और वह ठन्डा हो गया।

एक अन्तिम घटना सुना कर इस वार्ता को समाप्त करता हूँ। एक बार गुरुकुल की हॉकी टीम को दिल्ली के सेन्ट स्टीफन्स कालेज की ओर से मैच खेलने का निमन्त्रण मिला। उन दिनों सेन्ट स्टीफन्स कालिज के प्रिंसिपल रुद्रा साहब थे, और श्रीयुत एन्ड्रूज़ अंग्रेजी के प्रोफेसर थे। उनका गुरुकुल से बहुत प्रेम था। हम लोग खेल से पहले रुद्रा साहब की कोठी पर पहुंचे, और वहां से दिल्ली की टीम और कालिज के बहुत अध्यापकों और छात्रों के साथ कुदसिया बाग की ओर चले। हमारे खिलाड़ियों के पांव नंगे थे, धोती ऐसे ढङ्ग से पहनी हुई थी कि एक छोर कमर में लपेटा हुआ था और दूसरा छोर गले में डाला हुआ था। गले में पूरी बाहों के कुरते पहने हुए थे। इस वेष को देख कर सेन्ट स्टीफंस के मजे हुए खिलाड़ी मुस्कराहट को न रोक सके, और आपस में कहने लगे "भाई आज तो मुसम्मात से मैच खेलना पड़ेगा"। खैर, हम लोग सब कुछ देखते और सुनते हुए खेल के मैदान की ओर चलते गये। वहां पहुँच कर जब दोनों दल मैदान में आये, तो गुरुकुल की टीम के खिलाड़ियों ने धोतियां उतार दी थीं, कुर्ता और निकर पहिन कर नंगे पांव फुर्ती से मैदान में आ गये। तब तो दर्शकों की हंसी बन्द हो गयी, और जब खेल शुरू हुई और नंगे पांव के खिलाड़ी हिरनों की तरह दौड़ते तब धीरे-धीरे दिल्ली के खिलाड़ी भी जूते उतार-उतार कर फेंकने लगे। आधी खेल होने तक दिल्ली के आधे खिलाड़ी जूते उतार कर फेंक चुके थे। जूते तो उतार दिये, परन्तु नंगे पैरों चलने का अभ्यास न होने से घास चुभने लगा, जिस ने दिल्ली की टीम का खेल बिगाड़ दिया। अन्त में नतीजा यह निकला कि नंगे पांव खेलने का अभ्यास होने के कारण गुरुकुल की टीम दो गोलों से जीत गई।

[आल इण्डिया रेडियो के सौजन्य से प्राप्त]।

★

ज्ञातव्य बातें

- सन् १९५४ में, भारत में १०२ करोड़ रुपये की लागत से खनिज पदार्थ निकाले गये।
- सन् १९५५—५६ में, नये उद्योग शुरू करने के लिए १६४ लाइसेन्स दिये गये। पिछले वर्ष केवल ११० लाइसेन्स दिये गये थे।
- सन् १९५५ में, भारत में चीनी बनाने की जितनी मशीनें तैयार हुई उनका मूल्य लगभग १६ लाख ३ हजार ५०० रुपये है।
- सन् १९५५ में भारत का निर्यात व्यापार ५६३ करोड़ रुपये से बढ़ कर ६०४ करोड़ रुपये हो गया।
- भारत सरकार ने, आंध्र, बम्बई, त्रिपुरा तथा उत्तरपूर्व सीमान्त अभिकरण की सड़क बनाने की योजनाओं के लिए ४२ लाख ६३ हजार रुपये स्वीकृत किये हैं।

महायान बौद्ध ग्रन्थ

पाली के अतिरिक्त अन्य कई भाषाओं में भी बहुत से बौद्ध ग्रन्थ मिलते हैं। लेकिन अलग-अलग भाषाओं में इन ग्रन्थों का रूप एकसा नहीं है।

पाली ग्रन्थ समिति ने जो धर्म ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं वे विभज्जवादिन नामक प्राचीन सम्प्रदाय के ग्रन्थ तथा उस के उस संशोधित संस्करण के अनुसार हैं, जिस का उपयोग अनुराधापुर (श्रीलंका) के महाविहार मठ में किया जाता है। बर्मा, थाइदेश और कम्बोदिया भी इसी संस्करण को उन धर्मग्रन्थों का असली रूप मानते हैं।

बुद्ध धर्म के दो सम्प्रदायों—महायान और हिनयान—के अधिकांश अनुयायियों ने त्रिपिटकों के अपने-अपने रूप बनाए हैं। किन्तु, महायान के बहुत से उप-सम्प्रदायों में उन का स्थान ईसा युग के प्रारम्भिक काल में बनाए गये ग्रन्थों ने ले लिया। ये ग्रन्थ संस्कृत में हैं, जो महायान शाखा की धर्म भाषा बन गयी थी। फिर भी, एशिया के दूसरे भागों में स्थानीय बोलियों को ही अच्छा समझा गया। इन में से बहुत से ग्रन्थों में भगवान बुद्ध के उपदेश हैं। लेकिन वे उपदेश त्रिपिटक में संग्रहीत उपदेशों से कहीं अधिक विस्तृत हैं। इसलिए उन्हें वैपुल्य सूत्र कहा जाता है।

महायान धर्म ग्रन्थ इतने विशाल हैं कि भिक्षुओं से भी यह आशा नहीं की जाती थी कि उन्हें उन का काफी ज्ञान हो। ईलियट के अनुसार वे दुनिया के सब से विशाल पवित्र ग्रन्थ हैं। उन में से बहुत कम ग्रन्थों का यूरोपीय भाषाओं में अनुवाद हुआ है और कुछ तो सिर्फ चीनी भाषाओं में अनुवादों के रूप में मिलते हैं। कुछ खास-खास महायान ग्रन्थों का विवरण नीचे दिया गया है :

१ प्रज्ञापरिमिता—शून्यता के सिद्धांत पर रचित ग्रन्थों का नाम है। वे सूत्र कहे जाते हैं और छोटे-बड़े होते हैं। चीनी भाषा में अनुवादित महान संकलन में २,००,००० पद हैं। इन में अलग-अलग सोलह सूत्र हैं।

वज्रछेदिका (हीरा काटने वाली) ग्रन्थ इन में सब से प्रख्यात ग्रन्थ हैं।

२ सद्धर्मपुण्डरीक—बहुत प्रसिद्ध महायान सूत्र है तथा चीन और जापान में इसे बहुत श्रद्धा से देखा जाता है। शाक्य मुनि द्वारा बोधिसत्वों की सभा में दिये गये प्रवचन का इस में सार है।

३ ललितविस्तार—भगवान बुद्ध के जीवन का बड़ा आकर्षक वर्णन है। पाली भाषा के वर्णन की अपेक्षा इस में भगवान बुद्ध की अलौकिकता पर कहीं अधिक जोर दिया गया है।

४ लंकावतार सूत्र—सूक्ष्म तत्वों का विवेचन करने वाला विशाल ग्रन्थ है। लंका में शाक्य मुनि ने धम्म का जो ज्ञान दिया, उस का इस में विवरण है।

५ सुवर्णप्रभास—एक वैपुल्य सूत्र है, जिस में इस बात पर जोर दिया गया है कि बुद्ध पारलौकिक थे।

६ गंडव्यूह—में शून्यवाद, धर्मकाय, बुद्ध की सर्वव्यापकता और बोधिसत्वों के प्रयास से संसार से मुक्ति के सिद्धांतों का उपदेश दिया गया है।

७ समाधिराज—में विभिन्न प्रकारों की तपस्याओं का वर्णन है, जिन में समाधिराज सब से उत्तम और महान है।

८ दशभूमीश्वर—बुद्धावस्था प्राप्त करने से पहले एक बोधिसत्व को जिन १० अवस्थाओं से गुजरना होता है, उस का विवरण इस में दिया गया है।

तथागतगुह्यक तथा उपर्युक्त आठ ग्रंथ संस्कृत में हैं और इन्हें नेपाल में नौ धर्म कहा जाता जाता है। इन नौ ग्रंथों के अतिरिक्त संस्कृत, चीनी, तिब्बती तथा मध्य एशियाई भाषाओं में अन्य बहुत से सूत्र हैं। अवदानों या पवित्र गाथाओं के रूप में और भी बहुत सी रचनाएं हैं। कई बातों में ये पाली के विनय पिटक से मिलती-जुलती हैं। अवदानों के एक दर्जन या उस से भी अधिक संग्रह हैं। महावस्तु और दिव्यावदान इन में सब से महत्वपूर्ण हैं।

बुद्ध भगवान अनावश्यक बखान के विरुद्ध थे, अतः संभवतः इसी कारण स्थविरवादिन दर्शन सम्बन्धी अधिक रचनाएं नहीं कर सके। दूसरी तरफ महायान में बहुत रचनाएं हुई। नागार्जुन का मध्यमकारिका ग्रंथ माध्यमिका शैली का आधारभूत ग्रंथ है। दूसरी शैली का सब से पहला ग्रंथ असंग कृत सूत्रालंकार था।

★

ऑपरेशन के समय कृतिम हृदय का सफल प्रयोग

रोचेस्टर (मिनेसोटा) के मेयो-क्लिनिक और मिनेसोटा विश्वविद्यालय में शल्य-चिकित्सा (ऑपरेशन) के समय हृदय-फेफड़े की मशीन (कृत्रिम हृदय) को अब अधिकाधिक संख्या में प्रयुक्त किया जाने लगा है। जिस समय इन उपकरणों को प्रयोग किया जाता है उस समय मनुष्य का हृदय आराम करता है और उसे कोई काम नहीं करना पड़ता। इस बीच सर्जन लोग हृदय को खोल कर उसे ठीक ठाक कर देते हैं।

इन मशीनों को हृदय की निकटवर्ती रक्त-नाड़ी के साथ जोड़ दिया जाता है। यान्त्रिक फेफड़े द्वारा रक्त को धक्का दे कर उस में ताजी ओषजन (ऑक्सीजन) भर दी जाती है और फिर इस ताजे रक्त को रोगी के शरीर में भेज दिया जाता है।

अब से लगभग तीन वर्ष पहले डिट्राइट के डा. एफ. डी. डोडरिल ने पहले पहल एक रोगी के शरीर में यान्त्रिक हृदय का सफलतापूर्वक प्रयोग किया था और उस में आधे मानव-हृदय का काम बन्द रखा था। बाद में फिलाडेल्फिया के डा. जौन गिब्बन ने (जो यान्त्रिक हृदय के बारे में अनुसन्धान करने वालों में अग्रणी समझे जाते हैं) एक युवती के हृदय को पूरी तरह अलग कर के यान्त्रिक हृदय का प्रयोग किया था और उतने समय में उस के हृदय की भीतरी दीवार में हुए छेद को सी दिया था।

रोचेस्टर के शल्य-चिकित्सक आज कल लोगों की जानें बचाने के लिए कृत्रिम हृदय का अधिकाधिक इस्तेमाल करने लगे हैं। अन्यत्र कहीं कृत्रिम हृदय का प्रयोग इतनी अधिकता से नहीं किया जाता।

"कृत्रिम हृदय' की सहायता से मेयो-क्लिनिक में अब तक ७८ रोगियों के हृदयों को ठीक किया जा चुका है। इसी तरह मिनेसोटा विश्वविद्यालय के मैडिकल स्कूल में १२० रोगियों को इस मशीन की सहायता से आराम पहुँचाया गया है।

विषैले संक्रामक कीटाणु और उनके विरुद्ध संघर्ष

श्री वी० चेर्वोन्स्की और जी० स्मोल्यान

१२ मई, १६३५ की बात है कि भूतत्वेताओं की एक छोटी सी टुकड़ी पशु-पक्षी पकड़ने वालों की एक वीरान झोंपड़ी में रात काटने के लिए रुकी। रात को उनमें से एक व्यक्ति की तबियत खराब हो गयी, उसके सिर में पीड़ा होने लगी, बुखार चढ़ आया और मतली सी होने लगी। सुबह उसकी चेतना लुप्त हो गई और संध्या होते ही उसका देहान्त हो गया। भूतत्ववेत्ताओं की वह टोली हतबुद्धि सी रह गयी। यह एक विचित्र बीमारी थी जिसने बिजली गति से उन के साथी को मृत्यु का ग्रास बना कर छोड़ दिया था। यह टोली सुदूर-पूर्व अलंघनीय वन-प्रान्त तैगा पर विजय पाने निकली थी—किन्तु उनके साथी की मृत्यु की भांति पहले भी अनेक स्वस्थ नवयुवक इस घातक बीमारी के शिकार बन चुके थे।

एक युवक डाक्टर ए० जी० पानोव पहले व्यक्ति थे जिन्होंने सुदूरपूर्व प्रदेश में इस अज्ञात प्राणघातक शत्रु के विरुद्ध संघर्ष करने का प्रयत्न किया। उसकी आकुल अपील के उत्तर में वैज्ञानिकों की एक टोली ने इस अज्ञात शत्रु पर विजय प्राप्त करने का उदात्त उद्देश्य लेकर तैगा की ओर अभियान किया।

१६३७-३८ में तैगा की इस भयानक बीमारी के वाहक का अता-पता मालूम हुआ।

टिक-एनसिफालिटिस—वह बीमारी जो केन्द्रीय नाड़ी प्रणाली पर आक्रमण करके शरीर को पंगु बना देती है और प्रायः मृत्यु का कारण बन जाती है—पर विजय प्राप्त की गई। सोवियत चिकित्सकों ने एक महत्वपूर्ण खोज की, उन्होंने प्रमाणित किया कि इस रोग की उत्पत्ति विषैले-तत्वों से होती है, जिनके रोग-वाहक कीटाणुओं का नाम उन्होंने तैगा कीटाणु रखा।

सुदूर पूर्व की इस बीमारी एनसिफालिटिस पर विजय प्राप्त करना सोवियत कीटाणुशास्त्र की एक महान् सफलता थी।

कीटाणु-शास्त्र क्या है ? इस विज्ञान का विजय क्षेत्र क्या है ? पिछली शताब्दी के अन्त होने तक अनेक संक्रामक रोगों—तपेदिक, कोढ़ आप्रेक्स, प्लेग, खसरा, चेचक, पागलपन, और इनफ्लुएञ्जा जैसी बीमारियों के कारणों का दुनियां भर के वैज्ञानिकों की चेष्टाओं के बावजूद पता न चल सका।

किन्तु १८६२ में, रूसी वैज्ञानिक डी० आई० ईवानोवस्की ने जो तम्बाकू के पत्तों पर आक्रमण करने वाली एक विचित्र बीमारी का अध्ययन कर रहे थे, पता लगाया कि यदि रोगग्रस्त तम्बाकू के पत्ते का रस विशेष छलनी से छाना जाये, तो भी वह संक्रामक तत्वों से मुक्त नहीं होता, यद्यपि अन्य परिचित जीवाणु छलनी के ऊपर रुक जाते हैं। इस तरह प्राणवान जीवनों के अदृश्य शत्रु—छने हुए कीटाणुओं 'वीरस' का पता चला।

लेटिन भाषा में 'वीरस' (कीटाणु) का अर्थ विष है। पहले तमाम संक्रामक तत्वों के वाहकों को इसी नाम से पुकारा जाता था। आज के समय में इस शब्द को अधिक संकुचित अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है, केवल विषैले कीटाणुओं के उस निश्चित वाहक दल को इस नाम से पुकारा जाता है जो संक्रामक बीमारियां उपजाते हैं।

कीटाणु अत्यन्त छोटे होते हैं। सबसे बड़ा कीटाणु आकार में एक मिलीमीटर का तीस करोड़वां भाग होता है। विद्युत् कामों का परी-

क्षण करने के दूरबीन का आविष्कार होने से ही यह सम्भव हो सका है कि छने हुए इन कीटाणुओं को देखा जा सके और इनका फोटो खींचा जा सके।

आधुनिक विज्ञान ने डेढ़ हजार से अधिक कीटाणुओं के सम्बन्ध से ज्ञान प्राप्त कर लिया है जो विभिन्न बीमारियां फैलाते हैं। उनमें ऐसे कीटाणु भी शामिल हैं, जो आदमी और पशु दोनों पर आक्रमण करते हैं चेचक, कुत्ते का पागलपन, पोलियोमेलिटिस (बच्चों को लकवे की बीमारी), माता निकल आना, मोतीझारा, सूजन, पीला बुखार, एनसिफालिटिस इत्यादि रोग इन कीटाणुओं की उपज हैं। पशुओं, पक्षियों, मछलियों और कीड़े-पतंगों में भी फालतू कीटाणु विद्यमान रहते हैं।

कीटाणुओं का स्वभाव वैचित्र्यपूर्ण हैं। प्रत्येक कीटाणु शरीर की विभिन्न ग्रन्थियों को नष्ट करने के उद्देश्य से अपने लिए चुन लेता है। उदाहरणतः चेचक का कीटाणु शरीर की त्वचा पर आक्रमण करता है, एवं पागलपन, एकसिफालिटिस, और मोलियोमेलिटिस के कीटाणु शरीर की विभिन्न नाड़ी-ग्रन्थियों पर आक्रमण करते हैं। उदाहरण के लिये एनसिफालिटिस के कीटाणु झिल्ली और भेजे में सूजन उत्पन्न करते हैं। मोतीझारा के कोटाणु श्वासेन्द्रियां और फेफड़ों के तरल पदार्थों में फैलते हैं। इन अदृश्य घातक शत्रुओं की संख्या बड़ी तीव्र गति से बढ़ती है।

यदि हम एक सफेद चूहे का भेजा लें जो एनसिफलिटिस रोग से पीड़ित है, और उसे पीस कर नमकीन पानी में १: १०० के अनुपात में घोल दें, तो इस हल्के सम्मिश्रण की एक बून्द लाखों चूहों को इस घातक रोग का शिकार बना सकती है। दूसरा उल्लेखनीय उदाहरण लीजिए।

मुर्गी के गर्भ में चौबिस घटों में मोतीझारा के सक्रामक कीटाणु इतनी अधिक संख्या में बढ़ जाते हैं, कि लाखों सेक लेने वाले अन्डों के भीतर गर्भ नष्ट हो जाते हैं।

कीटाणु विभिन्न उपायों से गर्भ धारण करते है, और तीव्र गति से संख्या में वृद्धि करके संक्रामक तत्वों को बड़ी तेजी से उत्पन्न करते हैं। वे जीवित प्राणियों के सबसे घातक शत्रु हैं।

स्पष्ट रूप से कीटाणुओं की उत्पत्ति प्राणों के सृजन के साथ आरम्भ हुई है, और मानव जाति से उनका युग-युगान्तर से सम्बन्ध चलता आ रहा है। आज हम जानते हैं कि चेचक और पोलियोमिलिटिस बीमारियों के चिह्न उन मृतक शरीरों में भी मिलते हैं, जो विगत ४००० वर्षों से सुरक्षित रखे हुए हैं। किन्तु केवल ६० वर्ष पूर्व ही हमें छने हुए कीटाणुओं के सम्बन्ध में वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त हुआ है। इस अवधि के दौरान में विभिन्न देशों के हजारों वैज्ञानिकों ने बड़ा महत्वपूर्ण काम किया है। कीटाणु शास्त्र में अनेक आश्चर्यजनक खोजें की गई हैं।

चेचक और कुत्ते के पागलपन के संक्रामक रोगों से बचने के लिये टीका लगाने की पद्धति के इतिहास से कौन अपरिचित है। आज हजारों लोग एडवर्ड जेनर और लुई पास्चर के नाम कितने प्रेम से लेते हैं। आज अनेक कीटाणु जन्य घातक बीमारियों पर विजय प्राप्त करली गई है और उन से बचने के अनेक सफल उपाय खोज निकाले गये हैं। सोवियत वैज्ञानिकों ने वसन्त-ग्रीष्म टिक एनसिफालिटिस के विरुद्ध अनेक नई ईजादें की हैं। बड़े जबर्दस्त परिश्रम के बाद ये सफलताएं मिली हैं। कीटाणुओं से मुक्ति पाने के लिए कोई नई ईजाद करना बड़ा कठिन और परिश्रम का कार्य है।

सबसे पहले ऐसो जीवित ग्रन्थि प्राप्त करनी

पड़ती है, जिसमें कीटाणु तीव्र गति से बढ़ सकें। एनसिफालिटिस के कीटाणुओं के लिये सफेद चूहे का भेजा सबसे उपर्युक्त सिद्ध हुआ। एनसिफालिटिस की बीमारी से मरे हुए चूहों के भेजों को ग्रन्थियों पर दीर्घकाल तक शरीरशास्त्रीय और रासायनिक प्रक्रिया की जाती है। इस के परिणाम स्वरूप मरा हुआ कीटाणु अपनी ध्वंसात्मक विशेषताओं को छोड़ने के बावजूद मनुष्य के शरीर में ऐसी शक्तियों का सृजन करने के लिए अपने में अद्भुत सामर्थ्य रखता है, जो उसे जीवित कीटाणु के संक्रामक रोग से हमेशा सुरक्षित रखती हैं। किन्तु इस समस्या का यह अन्तिम समाधान नहीं है एक लम्बे अर्से तक परीक्षण करने की आवश्यकता है। विशेष संस्थाओं द्वारा टीके की प्रत्येक क्रमगत श्रेणी का परीक्षण, प्रयोग में लाने से पूर्व, बड़े परिश्रम से किया जाता है। इस की कल्पना करना कठिन नहीं कि टीके में एक भी जीवित कीटाणु रहने से क्या परिणाम निकलेगा। बहुत अर्सा नहीं गुजरा, अमरीका के कारखाने में पोलियो के विरुद्ध डा० साल्क की अद्भुत टीका तैयार करते हुए जरा सी भूल हो गयी जिस के परिणामस्वरूप बीसों अमरीकी बच्चों को मृत्यु का ग्रास बनना पड़ा और उनमें अनेक बच्चे जीवन पर्यन्त के लिए पंगु हो गये।

पोलियोमेलिटिस के विरुद्ध टीके की रचना करना आधुनिक कीटाणु-शास्त्र का एक रोचक पृष्ठ है। अन्य टीकों की रचना करने के लिए अपेक्षाकृत यह सुगम था कि एक जीवित ग्रंथि का पता चलाया जाये, जो कीटाणुओं के जीवन्त कार्यों के लिए उपयुक्त हो, किन्तु पोलियोमेलिटिस के कीटाणु के लिए सैकड़ों किस्म की जीवित ग्रन्थियों का परीक्षण करना पड़ा। अन्त में बन्दर का गुर्दा ही एक ऐसा सन्तोषप्रद साधन मिला जहां कीटाणु इकट्ठा हो सकते थे। इस खोज से बच्चों को लकवा मार जाने की घातक बीमारी का इलाज करने का सफल उपाय निकाल सकना सम्भव हो सका।

निकट भविष्य में मानव जाति, खसरा, मोती झारा एवं घरेलू जानवरों और पौधों की कीटाणुजन्य बीमारियों से छुटकारा पा लेगी।

जो वैज्ञानिक कीटाणुओं की उत्पत्ति और प्रकृति का अध्ययन करते हैं, उन्हें अनेक दिलचस्प समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अभी तक इस प्रश्न पर गम्भीर वैज्ञानिक बहस चल रही है कि कीटाणुओं की प्रकृति सजीव पदार्थों से बनी है या जड़ पदार्थों से। क्या प्रकृति में कीटाणु-तत्व विद्यमान हैं? कीटाणुओं में सजीव प्राणियों के अनेक तत्व मौजूद हैं, किन्तु कुछ कीटाणुओं का स्वभाव रासायनिक पदार्थों से मिलता जुलता है। क्या कीटाणुओं की प्रकृति में जीवन्त प्राणियों की आधारभूत विशेषता विद्यमान है, जिस से शरीर में भोजन-पदार्थ जीवाणुओं में परिवर्तित हो जाता है? अथवा फलतः कीटाणु उस शरीर की जीवन्त प्रक्रियाओं पर निर्भर रहता है, जो उस के आक्रमण का शिकार होता है। अभी तक ये प्रश्न रहस्यमयी पहेली के रूप में ही हमारे सामने आते हैं। इस में कोई सन्देह नहीं कि इन समस्याओं के सुलझने से प्राणों की उत्पत्ति की समस्या पर भी प्रकाश पड़ेगा।

विगत अनेक वर्षों से लोगों का यह मत रहा है, कि कैंसर की उत्पत्ति विषैले कीटाणुओं से होती है। वास्तव में यह बात प्रमाणित हो चुकी है कि कीटाणुओं के कारण ही जानवरों को प्रचण्ड ढंग के फोड़े हो जाते हैं।

आज के युग में बुद्ध के विचारों का महत्व

डा० रामस्वामी अय्यर

आज के युग की समस्याओं का हल ढूंढने के लिए भगवान बुद्ध के जीवन और उपदेशों का विशेष महत्व है। आधुनिक युग में मनुष्य के ज्ञान का जो विकास हुआ है उस से बड़ी वैज्ञानिक उन्नति और बहुत भौतिक प्रगति हुई है पर इन से भविष्य के बारे में हमारा विश्वास तनिक भी नहीं बढ़ा है।

हैरोल्ड लास्की ने, जो एक स्वतन्त्र विचारक थे ठीक की कहा है 'मेरे विचार में यदि कोई भी हमारी आज की स्थिति पर गहराई से सोचेगा तो उसे यही बात बार-बार खटकेगी कि हमें आज दृढ़ विश्वास की आवश्यकता है, इसी से मनुष्य के मन की दुर्बलता दूर होगी।' उन के विचार में हम लोग सब मान्यताओं को भूल गये हैं और एक तरह के निराशावादी युग में रह रहे हैं। हम में भांति-भांति के अन्ध विश्वास घर कर गये हैं। हम अपने हाथ की बनायी मूर्तियों की पूजा करते हैं। आज के युग में जादू का स्थान मनोवैज्ञानिक विश्लेषण या मनोवैज्ञानिक चिकित्सा ने ले लिया है। साथ ही कम्युनिस्टों के वर्ग संघर्ष की अवश्यम्भाव्यता का सिद्धांत इत्यादि सब बातें उसी निराशा के विविध रूप हैं।

शांति की चाह इन सब उद्यमों के बावजूद हमारे चारों ओर शीत युद्धों और अणु विस्फोटों का दृश्य उपस्थित है और पृथ्वी को स्वर्ग बनाने का हमारा स्वप्न बड़ा धुंधला हो जाता है। आज सब लोग किंकर्तव्य विमूढ़ से हो गये हैं और शांति तथा विश्राम के इच्छुक हैं। इस अवस्था में भगवान बुद्ध के विचार और उपदेश हमें जितनी मानसिक शांति प्रदान कर सकते हैं, उतनी कोई अन्य विचार-धारा शायद ही कर सके।

बुद्ध ने हमेशा मध्य मार्ग को ही चुना। उन्हीं की भाषा में उन्होंने सांसारिक भोगविलास और केवल मोक्ष कामना के दो विषम मार्गों के बीच का मार्ग अपनाया। उनकी सारी शिक्षाओं का मूल सहिष्णुता और निष्पक्षता है। अम्बवेश्या का आतिथ्य स्वीकार करते हुए उन्होंने कहा था कि मेरे पास सामान्य और विशेष जैसे



तिब्बत के बौद्ध भिक्षु बोध गया मन्दिर में जा रहे हैं



हैदराबाद में २५०० वां बुद्ध परिनिर्वाण उत्सव

अलग-अलग विचार नहीं। तथागत मुट्ठी बन्द कर के ज्ञान नहीं देते थे कि कोई रहस्य उन के पास अवश्य रह जाय। उनकी किसी बात में कोई दुराव छिपाव नहीं था। उनके निर्वाण के समय जब उन के शिष्यों ने उन से कुछ सन्देश देने को कहा तो उन्होंने यही उत्तर दिया कि मैंने तो केवल एक मार्ग की खोज की और संघ को उन की लकीर पर चलने की आवश्यकता नहीं। सब लोग अपनी अन्तरात्मा और आत्मनिरीक्षण के द्वारा अपने लिए मार्ग निकालें। उन्होंने स्पष्ट रूप से अपनी पूजा कराने का निरोध किया। यह उन के चरित्र की सब से बड़ी बात है। अपने परम प्रिय शिष्य आनन्द को उन्होंने उपदेश किया 'तुम स्वयं सारे उद्योग करो। तथागत तो उपदेशकमात्र हैं।'

आध्यात्मिक उथल-पुथल का युग

वह जिस युग में उत्पन्न हुए उसमें भी आज की जैसी आध्यात्मिक उथल-पुथल मची हुई थी। उन्होंने धर्म, कर्म और संसार सम्बन्धी प्राचीन हिन्दू सिद्धांतों के बारे में कोई शंका नहीं उठाई। वास्तव में उन्होंने मध्य मार्ग, सब के प्रति उदारता दिखाने और पवित्र जीवन व्यतीत करने पर ही विशेष बल दिया। उन्होंने शास्त्रार्थी, जीव और ब्रह्म के विवाद तथा लोक परलोक के झगड़ों से दूर रहने का ही प्रयत्न किया और अपने अनुयायियों को भी इन से बचने का उपदेश दिया। उन का मत था कि अलौकिक सत्ता में विश्वास करने से मानवोचित आचरण करने में बाधा पड़ती है। वैसे उन्होंने माना है कि धर्म का मार्ग ही ब्रह्म प्राप्ति है।

व्यक्तिगत प्रयास

उन्होंने व्यक्ति को सदा प्रयत्नशील रहने की शिक्षा दी। वे ऐसे भगवान को नहीं मानते थे जो प्राकृतिक नियमों से पृथक् कुछ कर सकता हो। बुद्ध कोरे उपदेशक या तत्वज्ञ नहीं थे उन्होंने सदा अपने अनुभूत सत्य को दूसरों को बताया और आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग दिखाया। एक बार उनके एक शिष्य के मन में देवताओं और मनुष्यों तथा देवताओं के संबंध के बारे में बड़ी शंका उत्पन्न हुई। उन्होंने इन शब्दों में उस का समाधान किया, मानो किसी मनुष्य के शरीर में एक विषैला तीर घुस गया है और एक वैद्य उस की चिकित्सा करना चाहता है। क्या ऐसे समय पीड़ित व्यक्ति वैद्य से यह पूछने के झंझट में पड़ेगा कि किस ने यह तीर छोड़ा और वैद्य किस जाति या परिवार का है और वह लम्बा है या नाटा? इसी प्रकार तुम्हें यही जान लेना पर्याप्त है कि संसार दुःखमय है, दुःख का क्या कारण है और दुःख का निवारण कैसे हो।

भगवान बुद्ध ने नैतिक व्यवस्था में कभी अ-विश्वास नहीं किया, लेकिन वे इस बात पर जोर देते थे कि प्रत्येक बात को तर्क की कसौटी पर कसना चाहिये और भिन्नता पैदा करने वाली बाधाओं को दूर करना चाहिये। बुद्ध द्वारा प्रति-पादित निर्वाण का अर्थ जीवन समाप्ति नहीं, बल्कि आत्मा का स्वच्छन्द अस्तित्व है। उन्होंने बार-बार इस बात को दुहराया कि सब के प्रति प्रेम और दया रख कर तथा बुरी बातों को छोड़ कर और बुरी भावनाओं को दबा कर ही पूर्णता प्राप्त की जा सकती है। तथापि बुद्ध के पहले हिन्दू साधुओं ने भी सार्वभौमिक सद्भाव के महत्व को जाना था. लेकिन प्राचीन योग का मार्ग व्यक्ति को निजी साधना और चित्तवृत्तियों की एकाग्रता पर निर्भर करता था। लेकिन बौद्ध दर्शन में बोधसत्व प्राप्त करने वाले व्यक्ति पूर्णता प्राप्त करने के बाद, संसार के जीवों के दुःख दर्द दूर करने के लिए अपना उदाहरण और विचार सामने रखते हैं।

बुद्ध का प्रभाव

बुद्ध का प्रभाव बढ़ती हुई जाति व्यवस्था पर काफी पड़ा। वास्तव में भगवान बुद्ध ने मानवता की प्रतिष्ठा और गुणों पर बल दिया। जैसा कि धम्मपद में कहा गया है कि जाति से कोई ब्राह्मण नहीं होता, बल्कि जो व्यक्ति मनसा, वाचा, कर्मणा किसी को दुःख नहीं पहुँचाता और जो सत्यवादी तथा सदाचारी है, वही ब्राह्मण है। बुद्ध का यह सौभाग्य था कि उनके एक महान शिष्य, सम्राट अशोक ने भगवान बुद्ध की मूल शिक्षाओं को शिलालेखों द्वारा सुरक्षित रखा। अशोक महान का उदाहरण—बुद्ध की शिक्षाओं के प्रमाण और उन की व्यावहारिकता को सिद्ध करता है।

वैशाख पूर्णिमा के दिन हमें भगवान बुद्ध के जीवन और उपदेशों का स्मरण करना चाहिये। उनका व्यावहारिक उपदेश या सार्वभौमिक दया और संसार के हित के लिए अपना सर्वस्व त्यागना।

★

- सन् १९५५-५६ में देश में वर्तमान उद्योगों के विस्तार के लिए ३१६ लाइसेंस दिये गये। १९५४-५५ में यह संख्या २२६ थी।
- १९५६-५७ में ७५ हजार अम्बर चरखे कताई करने वालों को दिये जायेंगे।

उद्योग-व्यापार में कैमरे के चमत्कार

श्री फ्लौयड ए० ल्यूइस

फोटोग्राफी की उन्नत विधियां निकल आने के कारण मनुष्य का दृष्टिक्षेत्र बहुत बढ़ गया है; फलस्वरूप निर्माता और उद्योग-संचालक जिस प्रकार कच्चे माल, उत्पादन की मशीनों और तैयार माल की जांच-पड़ताल सूक्ष्मता से और शीघ्रतापूर्वक अब कर पाते हैं वैसी अन्य उपायों द्वारा इस से पहले सम्भव नहीं थी। इस प्रकार नई जानकारी प्राप्त होने से निर्माताओं को कम लागत पर बढ़िया माल तैयार करने में सहायता मिलती है।

इन में से एक विधि तीव्रगति वाले चल-चित्र लेने की है, जिस के द्वारा ऐसी क्रियाओं की रफ्तार धीमी कर के दिखाया जा सकता है जिन्हें हमारी आंखें पकड़ नहीं सकतीं। इसी प्रकार अधिक समय में होने वाले कार्यों के चित्रों को कम समय में दिखाया जा सकता है। प्रारम्भ में पेड़-पौधों के बढ़ने की क्रिया का अध्ययन करने के लिए इस विधि का विकास किया गया था, किन्तु अब इस का प्रयोग औद्योगिक कारखानों में अनेक प्रकार से किया जाने लगा है।

अणुवीक्षण यन्त्र लगा कर कैमरे से चित्र लेने की प्रक्रिया को 'फोटोमाइक्रोग्राफी' कहते हैं। इस विधि द्वारा लिये गए चित्र में हम किसी वस्तु के सम्बन्ध में सूक्ष्म से सूक्ष्म बातें देख सकते हैं। अब दोनों आंखों से देखे जाने वाला अणुवीक्षण यन्त्र लगा कर स्टेरियोस्कोपिक कैमरे की मदद से ऐसे चित्र भी लिये जा सकते हैं जिन की लम्बाई, चौड़ाई तथा मोटाई दिखाई पड़ती है। इस प्रयोग के कारण यह विधि और अधिक उपयोगी बन गई है। थोड़े से उदाहरणों से ऐसे कुछेक दिलचस्प तरीके पता चल जायेंगे जिन्हें फोटोग्राफी की उन्नत विधियों के साथ उद्योगों द्वारा प्रयोग में लाया जा रहा है।

मजदूरी में बचत

एक वायुयान-निर्माता ने तेज गति वाले चल-चित्र लेने की विधि की सहायता से डिजाइनों से सम्बन्धित अनेक समस्याओं को हल कर लिया है। इस प्रकार इस विधि को अपनाने से उस के कारखाने में कारीगरों की सैकड़ों घण्टे की मजदूरी बचने लगी है। इन चल-चित्रों से तेज क्रिया की गति किस सीमा तक धीमी कर के दिखाई जा सकती है, इस का कुछ अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि ये चित्र एक सैकिण्ड में सैकड़ों अथवा हजारों की संख्या में लिये जा सकते हैं, जब कि इन की तुलना में सामान्य चलचित्र प्रति सैकिण्ड के हिसाब से लिये जाते हैं। जब द्रुतगति से लिये गये चल-चित्र प्रति सैकिण्ड के हिसाब से दिखलाये जाएं तब उसी हिसाब से उनकी अपनी गति भी धीमी हो जाती है और उन के सम्बन्ध में सभी बातों का विस्तृत रूप में अध्ययन किया जा सकता है।

इस कम्पनी द्वारा जिन समस्याओं को हल किया गया है उन में से एक समस्या वायुयानों की अलुमोनियम की चद्दरों में कीलें लगाने के लिए छेद करने की आवश्यकता थी। छेद करते समय अक्सर बरमे टूट जाते थे और इस के कारण उत्पादन धीमा पड़ जाता था। छेद करने की क्रिया के समय लिये गये तीव्र गति वाले चल-चित्रों से बरमों के टूटने के कारण का पता चल गया। इस के बाद कम्पनी इञ्जीनियरों ने ऐसे बरमे बना लिए जिन से वह कठिनाई दूर हो गई और तेजी से उत्पादन होने लगा।

वही कम्पनी अलुमोनियम की तार से पेंच या कीलें बनाने के लिये कई मशीनें चलाती है।

उन में से एक मशीन में अचानक कुछ खराबी आ गई। जांच पड़ताल के सामान्य तरीकों से उस खराबी का पता नहीं चला। चलती हुई मशीन के लिये गये चल-चित्रों से पता लग गया कि मशीन में एक छोटा सा स्प्रिंग ठीक काम नहीं कर रहा है। उस के स्थान पर मजबूत स्प्रिंग लगाने से वह दोष दूर हो गया।

इस्पात-उद्योग में उपयोग

लोहे के कारखानों में ज्वाला, टांका लगाने के कार्यों और पिघली हुई धातु की देखभाल करने आदि के लिए तीव्र गति वाले चल-चित्रों का अनेक प्रकार से उपयोग किया जाता है। अब लौह-उद्योग इस विधि को यह जानने के लिए प्रयुक्त करता है कि भट्टी के भीतर क्या हो रहा है।

लोहा गलाने की भट्ठियों के भीतर देखने के लिए एक चौथाई इञ्च का केवल एक सुराख होता है, जो नीले शीशे से ढका रहता है। यह छोटा सा छेद भट्ठी-चालकों के लिए बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ है। चूंकि इस छिद्र के भीतर से तीव्रगति वाले दहकते हुए कोयले के कणों को आंखों से पकड़ना कठिन है, इसलिए यह विचारा गया कि उस क्रिया के तीव्र गति वाले चल-चित्र बहुत उपयोगी सिद्ध होंगे। फलतः एक-चौथाई इञ्च के छिद्र के स्थान पर २ इञ्च का छिद्र बनाया गया और उस पर पारदर्शक कठोर आवरण की खिड़की लगा कर उस छिद्र में से तीव्र गति वाले रंगीन चित्र लिये गये। इन चित्रों से प्रथम बार यह पता चला कि भट्ठी के भीतर किस प्रकार की क्रिया होती है। इस के परिणामस्वरूप अनुसन्धान का एक विस्तृत कार्यक्रम चालू किया गया है और आशा है कि इस के फलस्वरूप नये ढंग की बढ़िया भट्ठियां बनाई जा सकेंगी और आगे चल कर अच्छा और सस्ता लोहा मिलने लगेगा।

वस्त्र-उद्योग में

फोटोग्राफी का उपयोग सम्भवतः कपड़ा-उद्योग में सब से अधिक प्रसार से किया जा रहा है। इस के परिणामस्वरूप केवल अच्छे एवं सस्ते कपड़े का उत्पादन ही नहीं होने लगा है, बल्कि कपड़े के ऐसे नये नये नमूने भी तैयार होने लगे हैं जो पहले सुलभ नहीं थे। उदाहरण के तौर पर अब सीधे ही कपड़े पर चित्र छापना सम्भव हो गया है।

फोटोमाइक्रोग्राफी द्वारा कई वर्षों से तन्तुओं तथा धागों की बनावट का अध्ययन करना संभव हो गया है। इस प्रकार की फोटोग्राफी से ऐसे कपड़े तैयार करने में सहायता मिली है जिन की तह के निशान काफी देर तक नहीं बिगड़ते हैं और उन पर नमी का जल्दी प्रभाव भी नहीं पड़ता। धागे को अनेक द्रव्यों से मिला कर ये गुण पैदा किये जाते हैं। विभिन्न द्रव्यों के मिश्रण से मजबूत बनाये हुए धागों के चित्र ले कर यह पता चल जाता है कि वे द्रव्य तन्तुओं में कहां तक प्रविष्ट हुए हैं और इस प्रकार उन द्रव्यों की उपयोगिता प्रकट की जाती है।

तीव्रगति वाले चल-चित्रों की प्रक्रिया से भी कपड़ा-उद्योग को सहायता मिल रही है। यह उद्योग तीव्र गति वाली मशीनों को बहुत बड़ी मात्रा में प्रयोग करता है। यह स्पष्ट है कि जितनी अधिक गति से मशीनें चलती हैं उतनी ही अधिक गति से उत्पादन बढ़ता है और कम खर्च पर कपड़े तैयार किये जा सकते हैं। तीव्र गति वाले चित्रों से केवल अधिक तेज चलने वाली मशीनें तैयार करने में डिजाइनरों को ही सहायता नहीं मिली है, बल्कि ऐसी मशीनें तैयार करने में भी मदद मिली है जो बहुत

अच्छी तरह से चलती हैं और जिन से पहले से अच्छा कपड़ा तैयार होता है।

इसी प्रकार वस्त्र-उद्योग में धीमी गति वाले चल-चित्रों से बड़ा उपयोग लिया गया है और उस के कारण आदमियों द्वारा आंकड़े तैयार करने में होने वाले भारी खर्च में बहुत कमी हो गई है। निर्माता फोटोग्राफी की उन्नत विधियों के जो विविध उपयोग करते हैं उन में से यहां कुछ थोड़े से ही गिनाये गये हैं। इस प्रकार के उपयोगों की संख्या अनगिनत है। रसोई के बर्तनों से लेकर टैलिविजन और घास काटने के यन्त्रों तक प्रतिदिन के कार्यों में कैमरे की उन्नत विधियों का उपयोग किया जाने लगा है।

अब यह निर्विवाद रूप से प्रकट हो गया है कि कैमरे से उद्योगों की सूचना-पुस्तकों, रिपोर्टों और विज्ञापनों को चित्रमय बनाने के अलावा और भी बहुत से उपयोगी काम लिये जा सकते हैं।

समुद्र-गर्भ के चित्र उतारने वाला कैमरा

अमेरिका की राष्ट्रिय भौगोलिक समिति ने संसार के गहरे से गहरे समुद्र का चित्र उतार सकने में समर्थ कैमरा बनाया है यह कैमरा प्रति वर्ग इञ्च पड़ने वाले १७,००० पौंड के दबाव को सहन करने में समर्थ है। समुद्र की अधिकतम गहराई प्रशांत सागर में गुआम के निकट पाई गई है। यह गहराई लगभग ३५,६४० फुट है। यह कैमरा इस गहराई में पानी का जितना दबाव पड़ सकता है उस से भी कहीं अधिक दबाव सहन कर सकता है।

इस कैमरे की भूमध्यसागर, लाल सागर और भारतीय समुद्र में परीक्षा की गई है। इस से समुद्र-गर्भ के चित्र उतारने में क्रांति हो गई है। कैमरे की सहायता से प्राचीन जहाजों का पता लगा कर उन को निकाला गया है तथा उन के रहस्यों की जानकारी प्राप्त कर ली गई है। भूमध्यसागर में ३ मील की गहराई तक मछलियों के चित्र लिए गए हैं। कम गहरे समुद्र में टैलिविजन का भी सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया है। —

नये तत्वों की खोज

संसार के प्रमुख तत्व-अन्वेषक डा० ग्लैन टी० सीबौर्ग ने यह भविष्यवाणी की है कि आगामी ५ से १५ वर्षों तक सात नये तत्वों के निकल आने की सम्भावना है। कैलिफार्निया विश्वविद्यालय के इस वैज्ञानिक ने प्लूटोनियम तत्व की खोज में हाथ बटाया था। आपने कहा कि मेरा अभिप्राय यह है कि नव तत्वों को संख्या १०२ से १०८ तक पहुंच जायेगी।

डा० सीबौर्ग ने कहा कि कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में आजकल जो नई किस्म का अणु-विखण्डन यन्त्र तैयार हो रहा है सम्भवतः उसी की सहायता से इन तत्वों को तैयार किया जायेगा। इस मशीन को 'हिलेक' या (हैवी आयन लाइनीअर एक्सेलरेटर) कहा जाता है। यह मशीन 'नीऑन' (बिना रंग का, गैस वाला तत्व) की तरह के हैवी न्यूकिलयाई अणु केन्द्र में—जिस का आणविक वजन २० होता है—तेजी पैदा कर देती है।

इन बड़े अणु-केन्द्रों को यूरेनियम की तरह के जब भारी अणुओं के केन्द्रों पर फेंका जाता है तब नये और भारी तत्वों का निर्माण सम्भव हो सकता है। हल्के वजन की आणविक गोली की सहायता से वैज्ञानिकों ने १९५५ में तत्वों की संख्या १०१ तक पहुँचा दी है। नये तत्व अणु की बनावट के बारे में हमारी जानकारी में वृद्धि करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। ★

अति प्रश्न

श्री मनसुखा

महात्मा बुद्ध ने तात्विक समस्याओं को अति प्रश्न बतलाया और यद्यपि साफ-साफ शायद कभी नहीं कहा; परन्तु आभास (हख) यही दिखलाया कि तात्विक प्रश्न यदि बिलकुल एक दम बेकार नहीं तो लगभग फजूल से ही हैं: बहरहाल, इतने आवश्यक तो कदापि नहीं जितनी कि कुछ दूसरी बातें और कुछ दूसरे काम।

वे दूसरी बातें क्या और वे दूसरे काम कौन से ? उन्हीं से तो बुद्ध की शिक्षा या सदुपदेश का आरम्भ होता है। संसार में दुःख है; उस का कोई न कोई कारण अवश्य है। तत्काल निदान कर यथोचित्त उपाय द्वारा दुःख का निवारण न केवल अति आवश्यक बल्कि मनुष्य जीवन का मुख्य लक्ष्य अति महत्वपूर्ण कार्य बन जाता है। इस के मुकाबिल दुनिया कब बनी; क्यों बनी; किस ने बनाई—ऐसे सब प्रश्नों में उलझना क्या? आग लगने पर बजाय पहले हर तरीके से आग बुझाने के, इस जानकारी में लग जाने के समान न होगा ? किसने आग लगाई, क्यों लगाई कैसे लगाई ? यदि कोई ऐसा करे और अपने आप को जरूरी और मुख्य छोड़ गैर जरूरी या गौण काम में लगावे तो यह अच्छा भी न होगा और न ही उस के हित में। इस का यह मतलब नहीं कि तत्व मिमांसा कोई दिलचस्प विषय नहीं या मनुष्य का ऐसे—शायद कभी न हल होने वाले प्रश्नों पर विचार करना ही गलत है। भले ही हम इस विश्व और मूल सत्ता का राज साफ-साफ और पूरा-पूरा कभी न समझ पायें: हो सकता है कि जैसे हम बने हैं, हमारी बुद्धि ही इस मुश्किल काम के लिए पर्याप्त या योग्य न हो। परन्तु फिर भी जीवन मरण के मूल प्रश्न (इस जिन्दगी से पहले क्या था और मरने के बाद क्या होगा) दुनिया के बनाने वाला कौन है और उस ने यह दुनिया क्यों बनाई, यही दुनिया क्यों बनाई और जो कुछ भी है वही कुछ क्यों है उस से भिन्न और कुछ क्यों नहीं या बिलकुल शून्य ही 'सत्यं' क्यों नहीं है ?—ऐसे विपर्ययोत्पादक प्रश्न मनुष्य बुद्धि को आदि काल से आन्दोलित करते रहे और जहां तक लगता है आगे भी हमेशा करते रहेंगे। समय पर प्रत्येक दिन सूरज का निकल आना, इतने छोटे से बीच में इतने बडे पेड़ की 'सम्भावना और शुरूआत; कीचड़ में कमल, कांटों में फूल; लाखों प्रकार के जीव जन्तु और इन सब से भी बढ़ कर मनुष्य—मनुष्य का मस्तिष्क, उस की बुद्धि और उस का मन जो पल भर में कहीं से कहीं पहुंच जाने की योग्यता रखता है—क्या यह सब कुछ, यदि हम सोचें तो 'अपूर्ण चमत्कार' नहीं ? हमें विस्मय से नहीं भर देते और आनन्द उल्लास से भी, कि सौभाग्यवश हम इतने बड़े और बढ़िया 'तमाशे' में शरीक हुये और हकदार बने। परवरदीगार के इस 'अजीबोगरीब शौक' 'आनन्दमय क्रीडा' : 'कौतुकी लीला' के।

यह तो ठीक है जिन्दगी की इस दावत में शरीक होना—जिन्दगी के इस बुलावे को स्वीकार करना और जिन्दगी का राज समझने की कोशिश—परन्तु क्या सब कुछ समझ लेने से पहले जो कुछ मिल सकता है पा लेना अधिक जरूरी नहीं ? मान लो हम जिन्दगी को पूरी-पूरी तरह समझ तो न पाये परन्तु जी ठीक तरह गये 'वह कुछ' प्राप्त या सिद्ध भी कर लिया जो मनुष्य जीवन में सर्वश्रेष्ठ हैं, तब हमारा तात्विक अज्ञान या क्षुद्र ज्ञान इतना अधिक

हानिकारक नहीं रहा और हम इतनी अधिक हानि में भी नहीं रहे जितनी कि रह सकते थे। यदि जिन्दगी में जी तो ठीक तरह नहीं पाते; भले ही कुछ तात्विक या मूल प्रश्नों के उल्टे सांधे कुछ सही-कुछ गलत उत्तर खोज लिए होते। क्योंकि जिन्दगी में मुख्य काम जीना है, ज्ञान नहीं और ज्ञान भी यदि मुख्य है, तो सब से महत्वपूर्ण सिर्फ जीवन का : अर्थात् हम कैसे जियें और क्या करें कि मनुष्य जीवन सर्वश्रेष्ठ—पूर्णतया चरितार्थ—बन सके। यही तो हुआ जीवन-यापन का शुद्ध विज्ञान 'शास्त्र' और सब से मुश्किल कला भी—(क्योंकि यहां जानने से भी अधिक महत्व और जरूरी करना है) नीति धर्म या अध्यात्म शास्त्र सब विद्याओं में सर्वश्रेष्ठ विद्या अति गुह्य और राज्य विद्या ब्रह्म विद्या। सब से पहले इस का जानना जरूरी : सब से पहले इस का समझना जरूरी और सब से पहले इस का करना जरूरी तथा लाभदायक। कनफ्यूशियस ने जब कहा कि जब तक जिन्दा हैं हम पहले जिन्दगी का राज समझ लें—जिन्दगी की हो बात सोचें, मरने के बाद समझ लेंगे कि मौत क्या है—मरने के बाद क्या होता है—उस की भी यही इच्छा थी जो सुकरात की तात्विक समस्याओं के प्रति अरुचि से प्रकट होती है। बाबा ने अपने समय के या अपने से पहले के दूसरे दार्शनिकों की तरह अपने आपको तर्क-शास्त्र या तत्व मिमांसा की बहुत सी बेईमानी और न सुलझने वाली गुत्थियों में न ही उलझाया और न ही फजूल शास्त्रार्थ या वाद-विवाद कर उन से परेशान हुआ या दूसरों को परेशान किया। इस बात में तो सुकरात पूरा-पूरा सोफिस्ट के साथ था कि मनुष्य के लिए प्रथम और मुख्य बात मनुष्य को ही जानना : अपने आप को ही समझना है न कि प्रकृति या देवी देवताओं को। परन्तु बाबा और सोफिस्ट में दूसरी ओर अन्तर भी तो महान था। यह अन्तर इतना ही उन की गवेषणा या विचार-विमर्ष के क्षेत्र या विषय में नहीं; जितना कि दृष्टिकोण और उद्देश्य में था। सोफिस्ट चाहते थे मुख्य तौर पर व्यक्तिगत लाभ और बाबा शुद्ध ज्ञान—यद्यपि दोनों ही इस सत्य से सहमत थे कि अत्यधिक महत्व का मनुष्य के लिए मनुष्य का ही ज्ञान है।

फिर तत्वमिमांसा की समस्याएं कब आसानी से सुलझने में आती हैं। उन में से कुछ तो निस्सन्देह झूठी या केवल सच्ची आभासित होने वाली ही हैं—या पूर्णतया सत्य प्रश्न नहीं। तत्व मिमांसकों की ओर आक्षेप कि—फिलौसफर एक काली बिल्ली को अन्धेरी रात में ढूंढता रहता है और एक ऐसी बिल्ली जो न कभी थी, न होगी। यदि पूर्णतया उचित नहीं तो बहुत अधिक अनुचित भी नहीं। कारण बहुत सी समस्याएं तो मनुष्य फजूल ही बना लेता है जैसे कि बहुत से दुःख उस के अपने ही दुष्कर्मों के दुष्परिणाम होते हैं। जैनों ने इस पर वादविवाद किया कि तीर कमान से छोड़े जाने पर भी एक जगह से दूसरी जगह नहीं जा सकता। हमारे यहां साक्षात परमेश्वर के अवतार लेने या न लेने की सम्भावना पर बहुत बहस हुई। लोगों ने सिर्फ बहस मुबाईसा पर ही हमेशा बात न छोड़ी। कई जगह और यह लगभग सभी धर्मों में हुआ है, एक तात्विक मत वालों ने दूसरे तात्विक मत वालों के सिर फोड़े : उन्हें बुरा भला कहा, नागरिक अधिकार छीन लिए। यद्यपि कह सकते हैं कि इस में न तो धर्म का कसूर था न तत्व मिमांसा का। अवश्य, कसूर था तो मनुष्य का और उस के भीतर छुपे मुमकिन शैतान का जो जरा सा भी मौका पा मनमानी करने लगता है—यहां तक कि धर्म के

नाम पर भी अधर्म : और धर्म की आड़ में भी अधर्म।

परन्तु जहां तक ईमानदार तात्विक समस्याओं का भी प्रश्न है उनके भी उत्तर भिन्न-भिन्न हो सकते हैं : कितने ही समाधान भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से। इनमें से कुछ सही, कुछ गलत अवश्य होंगे; परन्तु जो सही लगते हैं उनको पूर्णतया सही होने की सम्भावना बहुत कम ही है। मनुष्य का ज्ञान इतना सीमित संकुचित और त्रुटिपूर्ण है उसकी बुद्धि इतनी अधिक अल्पः अपर्याप्त, अविकसित तथा अपरिमार्जित कि सत्य को सोलह आने पकड़ पाना तो दूर रहा वह उसका 'काम चलाऊ सही रूप भी शायद ही कभी कभी समझ पाती है। विशेष कर तत्वमिमांसा में तो जैनियों का स्याद्वाद वाला रुख और सिद्धान्त ही श्रेयकर तथा उचित जान पड़ता है : 'हो सकता है यह हो—हो सकता है वह हो : हो सकता है यह वह दोनों ही हों या यह भी हो सकता है कि यह वह इनमें से एक भी सत्य न हो'।

यदि वास्तव में हमारा तात्विक ज्ञान चन्द अन्धों के हाथी के भिन्न-भिन्न अङ्गों के अनुभव के समान है, तब तो प्रत्येक उत्तर के साथ यही लगा देना बेहतर होगा मुझे लगता है शायद ऐसा हो। निश्चित पर यह कहना कि सचमुच ऐसा ही है न कोरा दम्भ है, बल्कि अवैज्ञानिक भी। लिहाजा तत्वमिमांसा में अनुसन्धान के लिए क्षेत्र हमेशा खुला रहा, प्रेमपूर्वक विचार विमर्ष के लिए भी और दार्शनिक हठ या धार्मिक असहिष्णुता के लिए जरा भी नहीं।

यदि हम तत्व मिमांसा की समस्याओं के प्रति 'अति प्रश्न' वाला रुख पूर्णतया उचित या समाधान कारक न भी मानें; तब भी अनेकान्त वाद और स्याद्वाद वाला रुख हमें बहुत से तात्विक झगड़े झमेलों से बचा देगा।

यूं तो हमारे धर्म में तात्विक और नैतिक-आध्यात्मिक ज्ञान में मूलतः कोई भेद नहीं किया है। बल्कि सच्चा तात्विक ज्ञान तो मुमकिन ही नैतिक उत्थान या आध्यात्मिक विकास की पहचान है। क्या पातंजलि ने नहीं कहा 'मुक्तावस्था' में ऐसा अनुभूत होगा कि जो कुछ जानना था जान लिया है और जो कुछ पाना था पा भी। लिहाजा यदि शुद्ध तात्विक ज्ञान भी निरन्तर चित्त शुद्धि के अपेक्षा रखता है, तब हमारे दृष्टि कोण से भी मूलतः अति प्रश्न सिर्फ बाद के प्रश्न हो गये : आरम्भ के नहीं। आरम्भ में तो बुद्ध के कथनानुसार हम आवश्यक काम में लगें। चित्त शुद्धि करें और मोक्ष सिद्ध। फिर जिन प्रश्नों ने हल होना है अपने आप हो जावेंगे और जिन्होंने नहीं—वे अपने आप अनावश्यक अतिप्रश्न रह जावेंगे। जो तत्व मिमांसा के विद्यार्थी और अध्यापक भी हैं उनके लिए भी फिलसफा की गुत्थियों में सार या करने योग्य को न भुलावें और नाही तर्कजाल में अपने आप को 'गुमराह' हो जाने दें या दूसरों को करें—बहकावें। विशेषकर तो 'अति प्रश्न' का 'अहम मसला' दार्शनिकों की ही ऐतहात के लिए है और उन सामान्य आदमियों को बचाने के लिए भी जो इतने दार्शनिक तो नहीं परन्तु दार्शनिकों की बातों में जरूर आ जाते हैं। वैसे तो हमारे सब के लिए ही यह जान लेना आवश्यक है और फायदेमन्द भी कि, बहुत सी बातें बेकार सी ही होती हैं और बहुत से प्रश्न 'अति प्रश्न'।

★

राजस्थान की चित्र-शैलियां

श्री रामगोपाल विजयवर्गीय

संसार की रूपमयी सत्ता में जितनी विविधता और विचित्रता है उसका ज्ञान यद्यपि हम अपने दोनों चक्षुओं द्वारा ग्रहण कर सकते हैं किन्तु उसके अन्तर में छिपे सत्य को हम तभी पा सकते हैं जब उसका पूर्ण रूप से अध्ययन करें। प्रत्येक इन्द्रिय जन्य सुख इसी प्रकार उसको साधना के बिना सिद्ध नहीं होता। उसका एक व्याकरण होता है, साहित्य होता है और अनुभव की पृथक्-पृथक् विधियां होती हैं उदाहरण स्वरूप वाणी की मधुरता श्रवण द्वारा समान रूप से ग्रहण की जाती है किन्तु बिना स्वर ज्ञान के उसका आनन्द प्राप्त कर लेना कदापि सम्भव नहीं है। यही दशा चित्र अथवा अन्य कलाओं की है, यद्यपि चित्र की भाषा सार्वभौम क्षमता प्राप्त नहीं कर सकती।

रूप जितना विविध होगा, जितना विचित्र होगा, उतना ही अधिक रस दायक सिद्ध होगा। इसीलिये ईश्वरीय सृष्टि की विविधता हमारे आकर्षण का केन्द्र है। कैसा है, कैसा होगा, यही जिज्ञासा प्रतिक्षण हमारी रस वृत्ति को जागृत करती रहती है। इस दृष्टि से चित्र भी जितने विविध होंगे उतने ही हमारी रसरुचि को तृप्त करने में समर्थ होंगे। रूप में सौंदर्य की सम्यक अभिव्यक्ति ही चित्र का चरम लक्ष्य है। चित्रकार रूप का वैचित्र्य सौंदर्य के अनन्त सागर में डुबो कर रस की धारा बहाता है, तथ्य से सत्य की ओर अग्रसर होता है।

कल्पना की चरम अभिव्यक्ति

भारतीय चित्र विद्या में प्रकृति तद्वत् अनुवृत्ति नहीं है प्रत्युत प्रकृति में बिखरे हुए सौंदर्य को मधुमक्खी की भांति संचित करके प्रकाश में लाना है। कल्पना की चरम अभिव्यक्ति ही यहां के चित्रकार का कौशल है। इस दृष्टि से राजस्थानी शैली एक अध्ययन का विषय है। इसमें मौलिक अभिव्यक्ति के साथ रूप की उदात्त छटा विचित्र के सूत्र में पिरोई गई है। दर्शक को, जो कुछ वह देख रहा है, उसके आगे भी इतना कुछ दिखाने का प्रयत्न किया जाता है कि उसका ज्ञान लौकिक सौंदर्य से अलौकिक सौंदर्य की ओर अग्रसर होकर सौंदर्य के प्रति इतना गम्भीर हो जाता है कि जो कुछ प्रत्यक्ष है और जो कुछ नहीं है उसकी दृष्टि में समान रूप ले लेता है। वह सौंदर्य के स्थूल दान से सूक्ष्म ज्ञान की ओर बढ़ने लगता है। सौंदर्य का सूक्ष्म ज्ञान तो सूर्य के ज्ञान के समान है, वह वाणी का विषय नहीं है।

राजस्थानी चित्र सर्व प्रथम अपनी जाति का परिचय देता है पश्चात् अपना, किन्तु वह सरलता से स्पष्ट भी नहीं होना चाहता। दृश्य के ज्ञान की परीक्षा करता है। यदि उसकी दृष्टि परिमार्जित है, रस की मधुरता से परिचित है तो चित्र कुछ कहता है अन्यथा मूक के समान एक तमाशा बनकर रह जाता है। यदि आपका ज्ञान परिपक्व है तो आपको अपने प्रश्नों का उत्तर मिलेगा, यदि आप खाली दृष्टि से देखना चाहते हैं तो खाली ही लौट चले जाइये। कुछ पल्ले न पड़ सकेगा। तात्पर्य यह कि राजस्थानी चित्रों को समझने के लिए अपने ज्ञान को उस धरातल पर लाइये, जहाँ चित्र अपनी ज्ञान गरिमा लिये स्वयं बैठा है। भारतीय चित्र शास्त्रोक्त विधियों से युक्त मर्यादा के बन्धनों में बंधे आध्यात्मिक सिद्धान्तों के नियमों से गम्भीर होते हैं। वे केवल उसी से बात करते हैं जो उन से बात करने का पात्र हो। राजस्थानी चित्र

भारतीय शास्त्रोक्त परम्परा के दास हैं। एक पग भी मर्यादा छोड़ कर चलने वाले नहीं ?

आलोचकों का मत

राजस्थानी चित्रों की आलोचना करते समय चित्र पारखियों ने यह मत व्यक्त किया है कि राजस्थानी चित्र मुग़ल शैली से प्रभावित हैं। यह कथन असत्य नहीं, किन्तु राजस्थानी चित्रों ने मुग़ल शैली का बाह्य रूप ही किंचित मात्रा में ग्रहण किया है, चित्र की आत्मा सर्वथा भारतीय और अपनी मर्यादा में सीमित है। किसी ने वेश भूषा देखकर मुग़ल प्रभाव बताया तो किसी ने वृक्ष, लता और भवनों की परम्परा से उपरोक्त अनुमान लगाया। परन्तु उन्होंने चित्रों की उन विधियों की और उन नियमों का नहीं देखा, जो किसी भी प्रभाव के कारण एक तिल नहीं हिले यद्यपि राजस्थानी चित्रों में मुग़ल चित्रों की अनेक कुशल प्रतिलिपियां हुई हैं।

राजस्थानी चित्र-कला का सम्बल

मुग़ल सरदारों में रहकर जिन चित्रकारों ने चित्र विद्या की शिक्षा ली। वे उसके प्रभाव से छूट नहीं सकते थे, तब भी एक नियम, एक परम्परा थी जो राजस्थानी चित्रों को अपनी सीमा से बाहर नहीं होने देती थी। वह थी—शास्त्रों की आज्ञाएं। विष्णु धर्मोत्तर के आदेश जैसे उन्हें पथभ्रष्ट होने से रोक रहे थे। मुग़ल कला के आगे इस प्रकार की कोई पथनिर्देशक शक्ति नहीं थी। यही कारण था कि मुग़ल कला थोड़े ही काल में छिन्न-भिन्न हो गई। अंग्रेजी, भारतीय ईरानी अनेक प्रभावों ने उसे खिचड़ी बनाकर रख दिया। यद्यपि दूसरों से प्रभावित होना गुण है किन्तु अपनी मर्यादा छोड़ देना विनाश है। राजपूत चित्र शैली ने इसी गुण आधार पर अपना व्यक्तित्व समाप्त नहीं होने दिया।

जिस समय मुग़ल कला का ह्रास होने लगा, उस स्थिति में भी राजपूत चित्र मौन दबे पड़े रहे, किन्तु उन्होंने अपने को जीवित रखा। इसका परिणाम यह हुआ कि आज के प्रगतिशील युग में राजस्थानी चित्रों की परम्परा पुनः जीवित हो उठी है। यह कहना अत्युक्ति न होगा कि पाश्चात्य चित्रकारों ने प्रगतिशील प्रयोगों की प्रेरणा राजस्थानी चित्रों से ग्रहण की है। फ्रांस के चित्रकार और उनके अनुयायी भारत के प्रगतिशील चित्रकार क्या वही चित्रित नहीं कर रहे हैं जो राजस्थानी चित्रकार आज से चार सौ वर्ष पहले चित्रित कर चुके थे ? राजस्थानी चित्रशैली छोटे से राजस्थान प्रान्त में विकसित हुई, किन्तु उसमें कितनी विवधता, कितना प्रचुर वैचित्र्य और कितनी सशक्त अभिव्यक्ति है इसका ज्ञान हमें उसकी विभिन्न शैलियों पर एक दृष्टिपात करने से होगा।

बारह शैलियां

राजस्थानी शैली में सब मिला कर बारह शैलियां हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं : जयपुर शैली, जोधपुर शैली, बीकानेर शैली, जैसलमेर शैली, कोटा शैली, बून्दी शैली, किशनगढ़ शैली, नाथद्वारा शैली, करौली और भरतपुर शैली। इनमें भी पांच प्रमुख शैलियां हैं और अन्य सात इन्हीं पांचों के अन्तर्गत थोड़े भेदों के साथ चलती हैं। इन पांचों शैलियों में पुरुष और नारी के भिन्न-भिन्न नख शिख चित्रित किये जाते हैं वृक्ष लता, पशु, पक्षी, भवन, आसन, रंग और रेखायें सब अपनी-अपनी सीमाओं में मर्यादित हैं, जिनका ज्ञान थोड़े विवेचन से ही प्राप्त किया जा सकता है। हाशिये, फूल, पत्ते, आभूषण, वस्त्रों के प्रकार, वेश-भूषा आदि को देखने पर हम निश्चित कर सकते हैं कि ये अमुक शैली के हैं।

राजसी कला और लोक कथा

इन शैलियों के रूप और इनके प्रकार विशद हैं। इन शैलियां को भी दो मार्गों में विभक्त किया जा सकता है—एक राज्याश्रम में पली राजसी कला और दूसरी जनता के सम्पर्क में पली लोक कला। राजसी कला का रूप वैभव अत्यन्त आलंकारिक तथा परिश्रम युक्त था। इस प्रकार के चित्र राजाओं के विलासपूर्ण जीवन, धार्मिक जीवन युद्ध, आखेट और मनोरंजन की विविध लीलाओं के प्रतीक हैं। ये चित्र राजाओं को प्रसन्न करने के लिए अथवा उनकी आज्ञाओं से बने। इन राज्याश्रित चित्रकारों को बड़ी-बड़ी जागीरें, सम्मान और पुरस्कार मिलना रहता था। उनकी साधना के लिए उत्तम उपकरण प्राप्य थे। उत्तम से उत्तम प्रेरणा-मूलक सामग्रियां उपस्थित रहती थीं। सुविधाओं के कारण राजस्थानी कला ने उत्थान की चोटी पर पांव रक्खा। धार्मिक प्रवृत्ति ने भी इस क्षेत्र को उर्वर बनाया।

भगवान के दर्शन की एक विधि

भक्ति कला का वह युग चित्रकला के लिए अत्यन्त लाभप्रद प्रमाणित हुआ, जब वल्लभ सम्प्रदाय के आचार्यों ने 'सर्व खल्विदम् ब्रह्म' कह कर समस्त रूपों में भगवान की सत्ता का आरोप मानकर चित्रकला को भगवान के दर्शन की एक विधि प्रमाणित किया। चित्र और काव्य एक दूसरे प्रतियोगिता में आये। चित्र काव्य से और काव्य चित्र से आगे बढ़ने के लिये मार्ग ढूंढने लगे। कवि सूरदास ने भगवान की बाल-लीला का ऐसा अद्भुत चित्रण किया कि चित्रकारों की तूलिका उन भावनाओं को चित्रित करने के लिये विवश हो गई। राधा माधव का लीलाविलास सागरको तरने का अवलम्ब बन गया। चित्रों की उपयोगिता उतनी ही समझी जाती थी जितनी काव्यों की।

अनेकों चित्र, काव्य का आनन्द सरलता से लेने के लिये चित्रित किये गये। प्रातःकाल चित्र दर्शन उपासना का अङ्ग बन गया तथा चित्रों की चर्चा घर-घर में चल पड़ी। जनता ने भी चित्रों का स्वागत किया। चित्र राज दरबारों के साथ-साथ बाजार में उतर आये। लोक कला का निर्माण इसी जनता के चित्र-प्रेम ने किया। राग रागिनियों के सम्पूर्ण भेद, नायिका भेद के विविध अङ्ग और रामायण के कथा प्रसंग चित्रों के रूप में घर-घर पहुंचने लगे। जनता की रस रुचि परिपक्व होकर सौंदर्यतत्व के सम्यक् विवेचन पर उतर आई। यही रीतिकालीन युग था, जब केशव ने 'रसिक प्रिया' और घनानन्द ने 'सुजान' का गुण गान किया, जब कवि देव की नव्वी नायिकायें चित्रों के क्षेत्र में उतर आईं, मतिराम की नायिकाओं के कटाक्ष, चकोर, खंजन, कमल और मीन के रूप में चित्रों का विषय बने किशनगढ़ के कवि नागरीदास ने नागरी राधा को उपास्य मानकर उनके खंजन नेत्रों में अपने आपको समर्पित कर दिया। राधा की वह छबि किशनगढ़ के चित्रों में छा गई राधा को नवीनतम रूप में चित्रकारों की तूलिका ने निर्मित किया। उस रूप पर जनता मुग्ध हो गयी। नागरीदास के भजन इक-तारों की ध्वनियों में गूंज उठे और राधा की रूप माधुरी जन जन की आंखों में समा गयी। कोटि कोटि हृदय उस रूप माधुरी पर निछावर हो गये—प्रिया चरण पद परस हित, लियौं रूप घनश्याम। कवि नागरीदास जी का मत था कि श्री कृष्ण ने राधारानी के चरणों को स्पर्श करने ही के लिए अवतार लिया था। तब उस रूप पर क्यों न कुरबान हो जाते?

रूप की आराधना में डूबा राजस्थान

उस काल में सारा राजस्थान रूप की आरा-

धना में डूबा हुआ था। जोधपुर के पट दर्शक सचित्र कहानियों को गीत और वाद्य के साथ घर-घर में दिखलाते फिरते थे। बीकानेर के मथेरे, जो ब्राह्मणों की एक जाति विशेष है, सचित्र पुस्तकें लिखने लगे थे। जयपुर के कुम्हारा भित्तियों पर चित्र अङ्कित कर रहे थे। जैसलमेर के भाटी राजपूत तलवार छोड़ कर तूलिका से खेल रहे थे। किशनगढ़ के दायमा ब्राह्मण और बूंदी के जोशी राधा मुकुन्द की केलि कलाओं का चित्रण कर रहे थे। स्त्रियों ने भी इस प्रगति में हाथ बंटाया। वे घरों की दीवारों पर, आंगन में, बरतनों पर मेंहदी के बहाने अपनी हथेलियों पर प्रतीकात्मक चित्र बनाने लगीं।

राजस्थान का चित्र-शिल्प लकड़ी, लोहा, पत्थर और मिट्टी तक के ऊपर उतर आया था। आमोद-प्रमोद में चित्रों का व्यवहार होने लगा। आश्विन मास में प्रत्येक रात्रि को नये-नये चित्र बनाये जाते थे और जनता के देख लेने के पश्चात प्रति दिन मिटा दिये जाते थे। इस प्रतियोगिता में जनता भाग लेती थी और यहां के राजा पुरस्कार के रूप मे अपनी रुचि का प्रमाण देते थे। मन्दिरों के उत्सव, विवाह, मेले तथा नित्यकर्मों में भी चित्र-दर्शन की परिपाटी थी। इस रस रुचि ने राजस्थानी संस्कृति को इतना कुछ दिया कि आज सारा राजस्थान एक अद्भुतालय दिखलाई पड़ता है। रंग-विरंगा राजस्थान आज भी भारतीय संस्कृति का प्रमुख अङ्ग है और यहां की चित्र शैली विदेशों में भी अध्ययन का विषय बन गयी है।

★

ज्ञातव्य बातें

- अगले पांच साल में भारत में संग्रहालयों के विकास और पुनर्गठन के लिए लगभग ढाई करोड़ रुपये दिये गये हैं।
- भारत में १९५५ में ४०,६०,००० रुपये की लागत के शीत ताप नियन्त्रक यन्त्र बनाये गये।
- १९५४-५५ में भारत में १ करोड़ ८३ लाख एकड़ भूमि में कपास बोयी गयी। पिछले वर्ष १ करोड़ ७२ लाख एकड़ भूमि में कपास बोयी गयी थी।
- भारत सरकार अब तक विभिन्न राज्यों में १३ औद्योगिक बस्तियां बनाने की अनुमति दे चुकी है, ताकि सारे देश में उद्योग फैल जाएं।
- दूसरी आयोजना की अवधि में लगभग २३०० परिवार आयोजन केन्द्र खोले जायेंगे।
- दूसरी पंच वर्षीय आयोजना में अनुसूचित जातियों के कल्याण के लिए २० करोड़ २८ लाख रु० रखा गया है।
- भारत और तिब्बत को मिलाने वाली सड़क के निर्माण पर अब तक ७१ लाख २६ हजार रुपया खर्च किया जा चुका है।
- सन् १९५५ में देश में ८२६००० रुपये के कीमत की तोलने की मशीनें तैयार की गयीं।
- १९५२-५३ में देश में चाय की खपत १७ करोड़ ५० लाख पौंड थी, जो १९५४-५५ में १८ करोड़ ३० लाख पौंड हो गयी।
- १९५५-५६ में भारत सरकार ने राष्ट्रीय अनुशासन योजना पर ४३२००० रु० खर्च किया।

राष्ट्रिय-शिक्षा

श्री रामपालसिंह

हम सभी जो शिक्षा से सम्बन्धित हैं हृदय से चाहते हैं कि शिक्षा के क्षेत्र में देश की वास्तविक आवश्यकताओं का मनन करें और प्रयास करके पूर्ण कर सके। गुरुकुल विशेषकर उन संस्थाओं में से रहा है जिसने शिक्षा के वास्तविक क्षेत्र को ही अपना प्रथम उद्देश्य रखा है। उस काल में जब कि देश की सरकार को गुरुकुल फूटी आंख नहीं भाता था देश के नैतिक तथा सांस्कृतिक उत्थान में एवं परतन्त्रता की श्रंखलाओं को तोड़ने में जी तोड़ प्रयत्न किया है। जो इस से सम्बन्धित रहे हैं उन्हें इसका पूरा गौरव होना चाहिये।

आज थोड़ा परिस्थितियों में परिवर्तन है और वह यह कि हम अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये विदेशी सरकार से मुक्त हैं, किन्तु क्या इस स्वतन्त्रता का हम पूरा लाभ उठा सके हैं? यह बात विचारणीय है।

स्वतन्त्रता प्राप्त होने के पश्चात् जो बड़ी-बड़ी समस्यायें अपने विराट रूप में हमें अङ्गरेजों द्वारा सौंपी गई वे थीं हर ओर 'अभाव' खाने के अन्न की कमी, पहनने के कपड़े की कमी, इलाज के लिये दवा तथा डाक्टरों की कमी, पढ़ाने के लिये विद्यालयों की कमी और उद्योग के लिये चतुर श्रम की कमी। पंचवर्षीय योजना बनी जो इन कमियों को दूर करने के लिये राष्ट्र का बहुत बड़ा प्रयत्न है अभी दूसरी पंचवर्षीय योजना में यह विश्वास किया जाता है कि अब तक ४० प्रतिशत बच्चों को शिक्षा प्राप्त हो सकती थी उसे चढ़ा कर ६० प्रतिशत किया जा सकेगा। इसके लिये १५८ करोड़ रुपया नियत किया गया है, सन् १९५५ तक १०६ करोड़ रुपया ४ वर्ष में शिक्षा पर व्यय किया गया है किन्तु इतने बड़े देश के लिये यह राशि बहुत ही न्यून है। इस राशि का बढ़ाना भी देश के लिये सरल कार्य नहीं, राष्ट्र को सभी क्षेत्रों में प्रगति करनी है। इस कारण जो राष्ट्रिय आय है उसका एक निश्चित भाग ही हमें प्राप्त हो सकता है, फिर भी शिक्षा की ओर पूरा ध्यान अभी नहीं हुआ है।

आज की शिक्षा की बहुत कटु आलोचना हो रही है, उसका मुख्य कारण उसका केवल बौद्धिक और सैद्धान्तिक होना ही है। इस लिये हमारे योजना आयोग ने यह सिफारिश की है कि सब प्रारम्भिक पाठशालायें, बेसिक स्कूल में बदल दी जायें। जहां मस्तिष्क हृदय और हाथ तीनों विकास पा सकें। और माध्यमिक शिक्षा भी सही सिद्धान्तों पर निर्धारित की जाए, कमीशन ने ग्रामीण विश्वविद्यालयों के स्थापना की सिफारिश की है। ये भी सिफारिश की गई है कि हाथ के कार्य को शिक्षा क्रम में उचित स्थान दिया जावे।

जहां तक शिक्षक वर्ग का सम्बन्ध है उस पर भी आयोग का ध्यान गया है बड़े दुःख का विषय है कि कुछ संस्थाओं को छोड़कर देश की सामान्य संस्थाओं में केवल वही शिक्षक आकर्षित होते हैं जिन्हें देश की बेकारी की समस्या ने यह उद्यम अपनाने पर विवश कर दिया है। आयोग ने सिफारिश की है कि इस शिक्षक वर्ग को जिनका कार्य देश के आगे आने वाली पीढ़ी को बनाना है कुछ अधिक सुविधायें दी जायें। जैसे—वेतन का बढ़ाना, निवास स्थान का निःशुल्क होना, तथा उनके बच्चों की शिक्षा में सहायता, यह प्रत्येक प्रादेशिक सरकार से सिफारिश की गई है कि वह यथा सम्भव उपरोक्त सुविधायें देने का प्रयत्न करे।

इसके अतिरिक्त प्रौढ़ शिक्षा पर भी हमारा

उचित ध्यान होना अनिवार्य है जहां अशिक्षित होना पाप है वहीं समाज को भी यह प्रयत्न करना उचित है कि वह इस कोढ़ को दूर करे।

जब हम राष्ट्रिय शिक्षा कहते हैं तो हमें पहले राष्ट्र शब्द प्राप्त होता है। राष्ट्रियता की परिभाषा कई प्रकार से की गई है। जहां तक एक प्रचलित सी बात है राष्ट्र उस मनुष्यों के समूह को कहते हैं, जिस की एक संस्कृति, एक भाषा, एक धर्म तथा एक इतिहास हो यह कोई पुरानी चीज नहीं है। यह तो केवल एक ही सदी पुराना विचार है। राष्ट्रियता एक भावना का नाम है और ऐसे मनुष्यों का समूह है जो एक साथ रहने की इच्छा रखते हों या रहते हों इस से ज्ञात होता है कि यह इच्छा जब क्षीण हो जाती है राष्ट्रियता छिन्न-भिन्न हो जाती है। इस से हम तात्पर्य निकालते हैं कि शिक्षा का उद्देश्य केवल अच्छे माता पिता या उद्योग पति ही नहीं बनाना है अथवा अपना जीवन निर्वाह करने के योग्य ही नहीं बनाना है अपितु उन्हें एक योग्य नागरिक जो देश के प्रति अपने उत्तरदायित्व को समझ सके और उसे निभा सकें ऐसा बनाना है।

इस की आवश्यकता आज हमें इस लिए अधिक है कि देश के सामने एक परीक्षा का समय है। आज अङ्गरेजों के पढ़ाये हुये तथा राष्ट्र के कुछ तत्वों के द्वारा ऐसे बीज बो दिये गये हैं जिन के परिणाम देश के विभाजन, प्रांतीयता, जातीयता, धर्म विरोधी भावनायें और वर्गवाद के रूप में हमारे राष्ट्र को अन्दर ही अन्दर खोखला किये जा रहे हैं. कोई भी ऐसा नागरिक जिस में देश प्रेम होगा, जिस में थोड़ी समझ होगी, क्या वह अपनी आंखों के सामने अपने राष्ट्र को निर्बल होता हुआ देख कर अपने हृदय को शान्त रख सकेगा। यह सब परिणाम उस गलत शिक्षा का ही है। जो मुस्लिम यूनिवर्सिटी, मुस्लिम लीग, राष्ट्रिय स्वयं सेवक संघ, हिन्दू महासभा आदि अहितकर तत्वों ने देश में अपने बहुत ही गौण लाभ के लिए उत्पन्न किए हैं या कर रहे हैं। मनुष्य की कुभावनाओं को उभारना इतना मुश्किल नहीं होता जितना कि उसे सहनशील बनाना, विभिन्न धर्मों में एकरूपता देखना और उस की अच्छी भावनाओं को जागृत करना होता है। हम शिक्षकों का यही कार्य है। आज हमारा उत्तरदायित्व ऐसे समय में और बढ़ गया है, गुरुकुल ने सदैव राष्ट्रवादी झंडा लहराया है, आहुति दी है, सामाजिक बुराई दूर करने के लिए बलिदान दिया है। यह उस समय किया है जब देश की अधिकतर पार्टी इस आन्दोलन को सफल बनाने में लगी हुई थीं, किन्तु आज परिस्थिति मेरे विचार से विस्फोटक है। महाराष्ट्र, पंजाब, बंगाल, बिहार आदि के दृश्य चिंतित करते हैं। आज देश की एकता को खतरा हो गया है, यह सब क्यों है ? मैं तो केवल इस का एक ही कारण समझता हूँ वह है सहनशीलता की कमी, एक प्रदेश दूसरे के प्रति असहनशील, एक धर्म दूसरे के प्रति कटु आलोचक एक जाति दूसरी जाति को हीन समझना इत्यादि।

आज गुरुकुल के सामने देश के लिए रचनात्मक कार्य करने का एक बहुत बड़ा क्षेत्र खुला है। यहां विभिन्न प्रान्तों से बच्चे शिक्षा पाते हैं और एक दूसरे के प्रति प्रेम, आदर और सम्मान की भावना लेकर जाते हैं। जिस प्रकार यहां आचरण सुधरता है, मस्तिष्क का विकास होता है। उसी प्रकार हमारे यह बच्चे देश के आर्थिक निर्माण में भी उपयोगी सिद्ध हों। यह विदित ही है कि कई संस्थायें इसी प्रकार की चल

रही हैं, और ईश्वर करे ये देश की श्रेष्ठ संस्थाओं में गिनी जाने लगें। मुझे तो यहां तक प्रार्थना करनी है कि अतीत की तरह से हम देश की वास्तविक आवश्यकताओं को समझें और प्रत्येक विद्यार्थी को यहां से ऐसा निपुण बना कर भेजें कि वे अपनी पत्र उपाधियों को ले कर एक कार्यालय सेदूसरे कार्यालय में किसी तुच्छ सेवा के लिए न फिरते रहें, अपितु वे किसी न किसी उद्योग में इतने स्वावलम्बी हों कि बेकारी की समस्या ही न उपजे। बेकारों की समस्या ने प्रतिक्रियावादियों की संख्या में वृद्धि की है। दूसरी ओर हमें प्रविधिज्ञों की कमी है। हमारा उद्योग ऊंचे स्तर पर नहीं पहुँच रहा है जिस पर देश की आय निर्भर है। क्या हम अब भी यह सोच सकते हैं कि वह कार्य किसी और के करने का है ? क्या देश की आवश्यकतायें हमें अब भी चेतना नहीं दिला सकतीं ? सदैव की तरह हमें अपने कर्तव्य के प्रति जागरूक ही रहना है। क्या ही अच्छा हो कि अपनी चादर को देखते हुए हम कुछ अपना लक्ष्य बना लें और एक-एक करके उपयोगी संस्थाओं की नींव रखते रहें।

नई शिक्षा संस्थाओं को खोलने में आर्थिक समस्याओं को दृष्टि में रखते हुए भारत की शिक्षा योजना तब सफल हो सकती है जब कि हम आगे से ऐसी संस्थायें खोलें जो शिक्षण एवं उत्पादन केन्द्र हों। अब तक शिक्षण और उत्पादन केन्द्र अलग-अलग रहे हैं, इनको यदि एक जगह कर दिया जावे तो इस समस्या का बहुत कुछ समाधान हो जाता है जैसे—टैक्सटाइल मिलों से सम्बन्धित शिक्षा चल रही है, वह इन मिलों में ही सिशिक्षुओं को कुछ अवैतनिक या मान वेतन देते हुये होनी चाहिये। इससे उस संस्था के स्थापन व्यय में बचत हो जाती है जिसका निर्माण केवल शिक्षा के हेतु ही किया जाता है। इस समय ऐसी अवस्था है कि जनता तथा सरकार दोनों ही हृदय से देश के निर्माण में सहयोग दे रहे हैं, और जितना सम्भव था जनता ने भी स्वतन्त्र शिक्षा संस्थाएं खोल कर इस समस्या को सुलझाने का प्रयास किया है। अब इससे अधिक अभिजन शिक्षा संस्थाओं का खुलना बहुत बड़ी संख्या में सम्भव नहीं रहा और न ही शिक्षा का पूरा उत्तरदायित्व सरकार सम्भाल सकती है। ऐसी अवस्था में केवल एक ही रास्ता है और वह है—

शिक्षा एवं उत्पादन केन्द्रों का खोलना

अब यह प्रश्न रहता है कि ये केन्द्र किस प्रकार के खोले जायें, यहां दो-एक उदाहरण देना अप्रसांगिक न होगा, लखनऊ में एक (इन्स्ट्रूमेंट फैक्ट्री) जिसमें छोटे महत्वपूर्ण शल्योपकरण तैयार किये जाते हैं और शिक्षा की पत्रोपाधि भी दी जाती है। मेरठ में एक प्राइवेट रेडियो इन्स्टीच्यूट जिसमें रेडियो बनते हैं, मरम्मत होती है और प्रशिक्षण भी होता है। इसी प्रकार की अन्य कई प्रशिक्षण संस्थाएं देश में सरकार तथा जनता के द्वारा खोली जा सकती हैं, दौराले में भी श्री मुख्तयार सिंह टैक्नीकल इन्स्टीच्यूट खुला था जिसे अब सरकार चला रही है। इसी प्रकार की संस्थाएं दूसर अन्य उत्पादन केन्द्रों से आसनजन हो जावें तो एक वास्तविक प्रशिक्षण भी होगा तथा उत्पादन में वृद्धि भी होगी और इसके साथ-साथ संस्थाओं का स्थापना व्यय बचेगा। ये उत्पादन एवं प्रशिक्षण केन्द्र रेडियो, घड़ी, माचिस, कागज, प्लाष्टिक साबुन, फर्नीचर, साईकल तथा (डाइज़) रङ्गों इत्यादि उत्पादन केन्द्रों में जोड़े जा सकते हैं या नए खोले जा सकते हैं। ये संस्थाएं आत्म निर्भर हो सकेंगी और देश पर एक शिक्षा का अतिरिक्त भार बन

कर उपस्थित नहीं होंगी। ये सम्भव है कि इनके निकले हुए विद्यार्थियों को मास्टर या बैचुलर जैसे देखने में सुहावने शब्द उपाधि रूप में न मिले किन्तु उन्हें एक ऐसी शिक्षा अवश्य मिलेगी जो देश के लिए अत्यन्त उपयोगी होगी। देश में रहने वाले प्रत्येक प्राणी का कुछ न कुछ उत्पादन करना परम कर्तव्य है, जो उत्पादन नहीं करता वह देश पर बोझ है। यह अनर्थ है कि उत्पादक और उपभोक्ता के बीच में मुनाफाखोर इतनी अधिक मात्रा में हों कि उपभोक्ता को उनका यथोचित न मिल कर मुनाफाखोर एक बहुत बड़ा भाग खा जायें जो अपने आप कुछ उत्पादन नहीं करते।

इस प्रकार शिक्षा का कार्यक्रम बदल जाने से आज की अनुशासनहीनता की समस्या भी सुलझ जाती है, इस समस्या को सुलझाने में एक-दो बातें और हितकर हैं और वो ये कि प्रत्येक संस्था अपने शिक्षार्थियों की कुछ न कुछ ऐसे कार्यों की ओर अभिरुचि, उत्पन्न करे जो वे अपने अतिरिक्त समय में कर सकें। यह कार्य दिल बहलाव के साथ-साथ ऐसे भी हों कि जो कुछ उन्हें आर्थिक सहायता भी प्रदान कर सकें जैसे—उनकी अभिरुचि मधु-मक्खी पालन, हाथ की कताई व बुनाई फल परीक्षण, फोटोग्राफी, प्लास्टिक के खिलौने आदि बनाना इस प्रकार के व्यासंग (हौबी) अपनाना हितकारी रहेगा, जिनमें व्यय न होकर कुछ प्राप्ति का आशा का जा सके, इन्हें अपनाने में किसी भी विद्यार्थी को कम सँकोच होने की सम्भावना है।

शिक्षा के अन्तर्गत एक विस्तृत कायक्रम आता है, विभिन्न अध्ययन तथा निर्माण की शाखाएं आती हैं जिनके द्वारा हम देश के नागरिकों को मस्तिष्क हृदय, शरीर से बलवान बना सकें, श्रम का आदर करना सिखा सकें। सब धर्मों की एक रूपता जो राष्ट्र के संगठन में नींव का पत्थर है बता सके। औद्योगिक शिक्षा व्यापार, रीति, चित्रकला, नृत्य, आदि मनुष्य को ऊंचे उठाने वाली मानसिक तथा शारीरिक सब प्रकार की शक्तियों को बलवान बनाने वाली शिक्षा ही राष्ट्रिय शिक्षा कहलाने योग्य है वह शिक्षा जो हमारी राष्ट्रियता को छिन्न-भिन्न करती हो आचरण रहित समाज का निर्माण करती हो और शिक्षा पाने के पश्चात् जो शिक्षित युवक देश के लिए एक भार बन कर रह जाते हों उस शिक्षा को तिलाञ्जली दे देना यह एक प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य है।

[पृष्ठ ३१ का शेष]

आश्चर्य हुआ कि 'उन का आत्मा इतना समुन्नत था कि बैठे हुए, खड़े हुए अपने चर्म चक्षुओं से भी अवतारों, सिद्धों, महात्मा सन्तों के स्वरूप देखा करती थी। ऐसी सिद्धि हजारों साधकों में से कदाचित् ही किसी साधक को प्राप्त हुआ करती है।' यहां 'अवतारों' तथा चर्म चक्षुओं से भी उनके स्वरूप देखने का उनका तात्पर्य न केवल अस्पष्ट किन्तु भ्रमजनक भी प्रतीत होता है जिस का इस पुस्तक में उल्लेख न होता तो हमारे विचार में अधिक अच्छा होता।

सम्पूर्णतया यह माता पूर्ण देवीस्मारक ग्रंथ भाव, तथा आकार प्रकार की दृष्टि से अत्यन्त उत्तम तथा उपादेय है जिसके लिये लेखक तथा प्रकाशक महोदय अभिनन्दन के पात्र हैं। आशा है कि धर्म प्रेमी श्री पं० ठाकुरदत्त जी के इस प्रेमोपहार से लाभ उठायेंगे।

—धर्मदेव विद्यामार्तण्ड।

साहित्य-परिचय

[समालोचना के लिये प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियां आनी आवश्यक हैं—सम्पादक]

ईशावास्योपनिषत्

महर्षि श्रीमद्दयानन्दकृत भाषाभाष्य तथा विविध मत भाव संग्रह सहित। संग्रहीता श्री रघुनाथदत्त बन्धु। पं० ठाकुरदत्त जी वैद्य, अमृतधारा, देहरादून द्वारा प्रकाशित मूल्य—प्रेमोपहार। पृष्ठ १३०।

श्री पं० ठाकुरदत्त जी वैद्य अमृतधारा आर्य-जगत् में सुप्रसिद्ध दानवीर धर्मप्रेमी सज्जन हैं। उन्होंने अपने ट्रस्ट के द्वारा अनेक लोकोपकारक कार्य किये हैं जिनसे जनता सुपरिचित है। अपनी स्वर्गीय धर्मपत्नी श्रीमती पूर्णदेवी जी के स्मारक के रूप में उन्होंने ईशोपनिषत् व्याख्या विषयक इस उत्तम पुस्तक का श्री पं० रघुनाथ दत्त जी बन्धु से लिखवा कर धर्मप्रेमी सज्जनों में वितरण के लिये प्रकाशित कराया है। इस के प्रथम भाग में ईशोपनिषत् के आधारभूत यजुर्वेद के ४० वें अध्याय की महर्षि दयानन्द कृत व्याख्या का भाषानुवाद आवश्यक टीका टिप्पणियों सहित दिया गया है। द्वितीय भाग में (पृष्ठ ३२ से ९६ तक) ईशोपनिषत् पर अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैतवाद तथा द्वैतवाद की दृष्टि से जो भाष्य किये गये हैं उन के मुख्य-मुख्य अंशों को संगृहीत कर दिया गया है।

श्री पं० ठाकुरदत्त जी ने 'प्रारम्भिक निवेदन' में अपनी स्थिति को इन शब्दों में स्पष्ट कर दिया है जिस से सर्व साधारण पाठकों को किसी प्रकार का भ्रम न रहे—

'आप को मेरा अगला लेख पढ़ने से यह तो स्पष्ट हो ही जाएगा कि मैं आर्यसमाज का एक तुच्छ कार्यकर्त्ता हूँ। इसी लिये श्री १०८ स्वामी दयानन्द के भाष्य को प्रथम स्थान दिया है। और द्वितीय भाग जिज्ञासुओं को सब आचार्यों के विचार जानने की सुविधा के लिये हैं। उनमें भी जो वैदिक सिद्धान्तों के अनुकूल हैं वे सब मुझे मान्य हैं। हर विचार के विद्वानों को इस से बड़ा लाभ होगा ऐसी मुझे पूर्ण आशा है।'

तुलनात्मक दृष्टि से अनुशीलन करने वाले विद्वानों को इस प्रकार के संग्रह से विशेष लाभ होगा और महर्षि दयानन्द कृत प्रमाण और युक्ति संगत व्याख्या में उनकी श्रद्धा बढ़ेगी ऐसा मेरा विश्वास है। इस अत्यन्त परिश्रम सूचक संग्रह के लिए श्री रघुनाथ दत्त जी तथा इसे प्रकाशित कर के धर्मप्रेमी सज्जनों में वितरण कराने के अभिनन्दनीय कार्य के लिये श्री पं० ठाकुरदत्त जी वैद्य धन्यवाद के पात्र हैं। पं० ठाकुरदत्त जी ने (१) ईशावास्यमिदं सर्वम्, (२) कुर्वन्नेह कर्माणि, (३) हिरण्मयेन पात्रेण इन तीन मन्त्रों की जो व्याख्या पुस्तक के भूमिका भाग की वह भी सरल, स्पष्ट और उत्तम भाव-पूर्ण है।

यह पुस्तक माता पूर्णदेवी जी के (जो श्री पं० ठाकुरदत्त जी की अनुव्रता धर्मपत्नी थीं और जिन का खेद है कि सम्वत् २०११ वैशाख कृष्ण षष्ठी को देहावसान हुआ) स्मारक के रूप में प्रकाशित की गई है अतः प्रारम्भ में उन का संक्षिप्त जीवन चरित्र दिया गया है जिस से स्पष्ट ज्ञात होता है कि वे अत्यन्त धार्मिकी ईश्वरभक्ता आदर्श-पतिव्रता देवी थीं। आध्यात्मिक दृष्टि से उन की उच्च स्थिति के विषय में श्री स्वामी सत्यानन्द जी, श्री आनन्द स्वामी जी और ब्रह्मचारी व्यासदेव जी के पत्र उद्धृत किये गये हैं जिन में से श्री स्वामी सत्यानन्द जी के ३०-३-५५ के पत्र के इन अंशों को पढ़ कर हमें

[शेष पृ० ३० पर]

गुरुकुल समाचार

ऋतु रंग

वर्षा ऋतु अपने पूरे यौवन पर है। समस्त प्रकृति आप्यायित हो रही है। वन-उपवन एकदम शोभित हो उठे हैं। ताल और तलैयाये किनारों तक छलछला उठी हैं। गुरुकुल की ईख और धान की खेतियाँ खूब लहलहा रही हैं। अभी तक मच्छरों का उपद्रव प्रारम्भ नहीं हुआ है। कुलवासियों का स्वास्थ्य अच्छा है।

स्वाधीनता दिवस

१५ अगस्त को वेद मन्दिर में समवेत हो कर समस्त कुलवासियों ने प्रेमपूर्वक स्वाधीनता दिवस मनाया। गुरुकुलाचार्य श्री पं० प्रियव्रत जी ने राष्ट्र पताका फहराते हुए इस दिन के गौरव पर एक छोटा सा प्रवचन किया। रात को महाविद्यालय आश्रम में श्री पं० निरञ्जनदेव जी के सभापतित्व में साहित्य-गोष्ठी सम्पन्न हुई। जिस में छात्रों ने कवितापाठ और कहानीपाठ द्वारा श्रोताओं को आनन्दित किया।

अभिनन्दन

हर्ष का विषय है कि गुरुकुल के सुयोग्य स्नातक श्री डॉक्टर धर्मानन्द जी केसरबानी आयुर्वेदालंकार, एम. डी. लखनऊ के राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय के आचार्य बनाए गए हैं। सब कुलवासी इस यश-पूर्ण उपलब्धि पर डाक्टर जी का सप्रेम अभिनन्दन करते हैं।

चिकित्सक संघ

अखिल भारतीय चिकित्सा संघ की देहरादून शाखा का वार्षिक सम्मेलन पिछले दिनों देहरादून में सम्पन्न हुआ। सभापति के आसन पर केन्द्रिय सरकार के रक्षामन्त्री श्री महावीर जी त्यागी थे। सम्मेलन में गुरुकुल के आयुर्वेदालङ्कार स्नातकों ने भी भाग लिया। सम्मेलन में कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत हुए। आयुर्वेद और एलोपैथी—दोनों के समन्वयात्मक अध्ययन द्वारा जिन्होंने तालीम पाई है, उन चिकित्सकों को कठिनाइयों पर सम्मेलन ने विशेष रूप से विचार किया और अधिकारियों के समक्ष निम्नलिखित माँगे प्रस्तुत की—

१ जीवन बीमा, रेलवे, सेना तथा अन्य स्वास्थ्य विभागों में केन्द्रीय सरकार इन को सेवा का अवसर प्रदान करे।

२ उक्त प्रकार के स्नातकों की एक पृथक् परिषद् (कौन्सिल) बनाई जाय जो पंजीकरण (रजिस्ट्रेशन) आदि का कार्य करे।

३ समस्त देश में शिक्षा का स्तर तथा उपाधि की समानता रहे।

गुरुकुल कुरुक्षेत्र

ग्रीष्मकालीन दीर्घावकाश के बाद ११ जुलाई से नये सत्र की पढ़ाई नियमित रूप से प्रारम्भ हो चुकी है। छात्रगण अध्ययन में दत्तचित्त हैं। गत वर्ष स्नानागार अधिक वर्षा के कारण गिर गया था। इस वर्ष नवीन स्नानागार, जलागार और नलकूप (ट्यूबवैल) बन कर तैयार हो गए हैं। नलकूप के लिए श्रीमती रुक्मिणी बहन (मुम्बई) ने पाँच हजार रुपये का दान दिया है। इसी प्रकार स्नानागार के लिए श्रीमती लीला बहन (मुम्बई) ने तीन हजार रुपये प्रदान किए हैं। एक दूसरे नलकूप के लिए कृष्णा टैक्सटाईल मिल अमृतसर के सञ्चालक श्रीयुत विश्वनाथ जी ने २०००) रुपये के दान का वचन दिया है। एक हजार का शुभदान श्री रामगोपाल गोरांमल अमृतसर वालों ने दिया है। ५००) का दान श्री रामनारायण राजकुमार अमृतसर वालों ने गुरुकुल को भेंट किया है। इन सब सात्विक दानदाताओं का गुरुकुल प्रेमपूर्वक धन्यवाद करता है। नलकूप और स्नानागार आदि की नवीन व्यवस्था से गुरुकुल के कृषि आदि के कार्यों में बड़ी सुविधा हो गई है।